देश-विदेश

40

अनियतकालीन बुलेटिन

अप्रैल–2022

सहयोग राशि तीस रुपये

इस अंक में विशेष

★ रूस–यूक्रेन युद्ध की विनाशलीला

★ निजीकरण की राह पर रेलवे

★ क्रिप्टो करेंसी : साम्राज्यवादी ताकतों के शोषण का हथियार

★ रूस–चीन और अमरीका के बीच बढ़ती दुश्मनी

★ साम्राज्यवादियों ने यूक्रेन युद्ध को अपरिहार्य बनाया

★ विश्व व्यवस्था में चौड़ी होती दरार

देश–विदेश

अनियतकालीन बुलेटिन (40)

अंक – 40

अप्रैल 2022

सहयोग राशि

तीस रुपये

सम्पादक

उमा रमण

उपसम्पादक

विक्रम प्रताप

सम्पर्क सूत्र

502/10 एस 1 साई कॉम्प्लैक्स,
डी ब्लॉक गली न. 1, अशोक नगर, शाहदरा
दिल्ली 110093

Email: deshvidesh@rediffmail.com

फोन न. : 09818622601

www.deshvidesh.net

उमा रमण द्वारा प्रोग्रेसिव प्रिन्टर्स, ए- 21 झिलमिल इन्डस्ट्रियल एरिया, शाहदरा, दिल्ली-93 से मुद्रित और 502/10 एस 1 साई कॉम्प्लैक्स, डी ब्लॉक गली न. 1, अशोक नगर, शाहदरा दिल्ली-93 से प्रकाशित किया गया।

इस अंक में–

सम्पादकीय

रूस-यूक्रेन युद्ध की विनाशलीलाः
युद्ध नहीं, शान्ति! लूट नहीं, क्रान्ति!! लेकिन कैसे? 1

निजीकरण की राह पर रेलवे -जे एन शाह 5

क्रिप्टो करेंसीः
साम्राज्यवादी ताकतों के शोषण का हथियार -प्रो. थोटा ज्योथि रणी 10

नागालैंड में मजदूरों का बेरहम कत्लेआम -मोहित पुण्डिर 15

स्मार्ट फोन : पूँजीवादी लूट का औजार -डॉ. बलजिन्दर 17

चरणों में कैसे आ गये? -विष्णु नागर 20

मोदी जी धन्यवाद -विष्णु नागर 21

चुनावी ढकोसले के पीछे सत्ता का चेहरा -राजेश कुमार 22

एजाज अहमद : प्रतिबद्ध बुद्धिजीवी का जाना 24

वैज्ञानिकों की गहरी खामोशी -सी पी राजेन्द्रन 27

समाचार-विचार

भारत में बेघर लोगों की स्थिति 29

कृषि शिक्षा और अनुसन्धान के बजट में कटौती 30

पेगासस की गुपचुप खरीद 31

पेगासस : जासूसी दुश्मनों की! 32

मारुति के मजदूर नेताओं की जमानत 33

विश्व असमानता रिपोर्ट के मायने 34

महामारी के समय मुनाफे का जैकपॉट 35

जनविरोधी यूनियन बजट-2022 37

उत्तर प्रदेश में मीडिया की घेराबन्दी 38

भारत को रवांडा बनाने की कोशिश 39

भारत में अमीरी-गरीबी की बढ़ती खाई 41

त्रिपुरा हिंसा : तस्वीर लेना ही देशद्रोह! 42

"भारत भगाओ" के रास्ते पर मालदीव 43

शिक्षा में बायजू का बढ़ता एकाधिकार 44

हुकुम, क्या कहूँ जो आपको चोट न लगे 46

इस फर्जी राष्ट्रवाद के सामने नहीं झुकेंगे 47

उत्तर-आधुनिकतावाद और व्यवस्था के कुतर्क -सोनू पवांर 49

रूस-चीन और अमरीका के बीच बढ़ती दुश्मनी -विक्रम प्रताप 52

साम्राज्यवादियों ने यूक्रेन युद्ध को
अपरिहार्य बनाया -प्रवीण कुमार 57

विश्व व्यवस्था में चौड़ी होती दरार -विक्रम प्रताप 61

सम्पादकीय

रूस-यूक्रेन युद्ध की विनाशलीला
युद्ध नहीं, शान्ति! लूट नहीं, क्रान्ति!! लेकिन कैसे?

यूक्रेन पर रूसी हमला शुरू हुए आज एक महीने से भी ज्यादा समय बीत चुका है। इस युद्ध के विनाशकारी परिणामों का सही अनुमान लगाना सम्भव नहीं, लेकिन जो भी जानकारियाँ मिल रही हैं वे दिल दहला देने वाली हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के आँकड़ों के मुताबिक 24 फरवरी, 2022 के बाद इस हमले में 2,685 नागरिक हताहत हुए और 38,66,224 लोग पड़ोसी देशों में शरण लिए हुए हैं, जिनमें करीब 90 फीसदी महिलाएँ और बच्चे हैं। संयुक्त राष्ट्र का अनुमान है कि अन्य 65 लाख लोग यूक्रेन के भीतर विस्थापित हुए हैं। रूसी सरकार के आँकड़ों के मुताबिक, 2,71,254 शरणार्थी रूस में शरण लिये हुए हैं। इसके आलावा 2,00,000 से अधिक रूसी नागरिक भी वहाँ से पलायन कर चुके हैं।

रूसी हमलों ने घनी आबादी वाले कई इलाकों को तबाह कर दिया है, जहाँ नागरिकों को बंकरों और मेट्रो स्टेशनों में शरण लेनी पड़ी है और लाखों लोग बिजली, पानी, दवा या बुनियादी सुविधाओं से वंचित होकर काल के गाल में समा रहे हैं। रूस की आर्टिलरी, रॉकेट और अन्य हथियारों से लगातार बमबारी के चलते चेर्निहाइव, खारकीव, कीव और मारियुपोल जैसे प्रमुख शहरों और दूसरे नागरिक क्षेत्रों के और भी अधिक नागरिकों के हताहत होने और बुनियादी ढाँचे के नुकसान की सम्भावना है।

निस्सन्देह, हमेशा की तरह यह युद्ध भी भयावह और विनाशकारी है। रूस और यूक्रेन की जनता ही नहीं, दुनियाभर की शान्तिप्रिय और न्यायपसन्द जनता युद्ध नहीं चाहती। यही कारण है कि रूस सहित दुनिया के तमाम देशों में युद्ध विरोधी प्रदर्शन हुए हैं। युद्ध की विनाशलीला को देखते हुए इनसानियत से प्यार करनेवाले किसी भी अमन पसन्द व्यक्ति की भावनाओं का आहत होना, पीड़ा, व्यथा और आक्रोश से भर जाना हमारी अत्यन्त स्वभाविक है, लेकिन युद्ध हमारी भावनाओं और इच्छाओं से स्वतन्त्र परिघटना है। इसलिए जब तक हम एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र पर युद्ध थोपने, हमला करने, कब्जा जमाने, कत्लोगारत करने और वहाँ लूट-खसोट मचाये जाने के असली कारणों को नहीं जानते तथा युद्धोन्मादी शक्तियों के षड़यंत्रों और दुरभिसंधियों को तथ्यों की रोशनी में समझने का प्रयास नहीं करते, तब तक युद्ध की विनाशलीला और उसके कारण हो रही तबाही के प्रति हमारी तात्कालिक करुणा और मानवीय संवेदना का कोई खास अर्थ नहीं। पीड़ा और आक्रोश को सही दिशा देने और अपनी धरती से युद्ध को हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त करने के लिए हमें आम तौर पर युद्धों और खास तौर पर मौजूदा युद्ध पर गहराई से विचार करना जरूरी है।

अठारहवीं सदी के प्रशियाई युद्ध विशारद कार्ल वोन क्लौजेविट्ज का मशहूर कथन है-- "युद्ध दूसरे साधनों से राजनीति की निरन्तरता है।" उनका मानना था कि युद्ध का अपने आप में कोई उद्देश्य नहीं, बल्कि यह एक राजनीतिक साधन है। यह दुश्मन पर अपनी इच्छा थोपने के लिए की जानेवाली हिंसा की कार्रवाई है।

सच तो यह है कि रूस-यूक्रेन युद्ध सिर्फ राजनीति की ही नहीं, बल्कि पश्चिमी साम्राज्यवादियों द्वारा दुनिया के अलग-अलग देशों पर थोपे गये उन तमाम युद्धों की भी निरन्तरता है जो अब से लगभग तीन दशक पहले जर्मनी के एकीकरण और सोवियत साम्राज्यवादी खेमे के पतन के बाद से ही लगातार जारी रहा है। इस घटना के बाद दुनिया के शक्ति सन्तुलन में जो बदलाव हुआ उसके परिणामस्वरूप अमरीकी चौधराहट में एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था और वाशिंगटन आमसहमति से दुनिया का संचालन शुरू हुआ, दावा तो यह किया गया कि अब शीत युद्ध की समाप्ति के बाद शान्ति का एक नया दौर शुरू होगा और दुनिया को शान्ति लाभांश हासिल होगा। लेकिन इस दौरान कोई ऐसा दिन नहीं गुजरा जब अपने साम्राज्यवादी वर्चस्व और लूट-खसोट के लिए दुनिया के किसी न किसी भाग में पूर्ण या आंशिक युद्ध जारी न रहा हो।

सोवियत संघ के पतन से पहले गोर्वाचोव ने अमरीका और यूरोप की यात्रा की। वे उन साम्राज्यवादी देशों के साथ एक नयी सुरक्षा संधि करना चाहते थे, जिसमें रूस को भी साझेदार बनाया जाता। रीगन प्रशासन के विदेश मंत्री जेम्स बेकर और पश्चिमी जर्मनी के विदेश मंत्री हांस डी जेंस्चर ने उनसे वादा किया कि जर्मनी के एकीकरण के बाद मौजूदा सरहदों से आगे नाटो का एक इंच भी विस्तार नहीं किया जाएगा, जिसका समर्थन ब्रिटेन और फ्रांस ने भी किया। कहा गया कि जो खर्च शीत युद्ध के काल में हथियारों पर खर्च होता था, अब नयी विश्व व्यवस्था में उसे सामाजिक सुरक्षा और कल्याणकारी योजनाओं पर किया जायेगा। दुनिया शान्ति के नये युग में प्रवेश करेगी, शान्ति का लाभांश वितरित होगा, इत्यादि...।

लेकिन जैसा कि हम जानते हैं, साम्राज्यवादी देशों के नेताओं की नकेल उन देशों के कार्पोरेट घरानों के हाथों में होती है। युद्ध उद्योग और हथियारों के सौदागरों के लिए युद्ध और कत्लो-गारत अकूत मुनाफे का जरिया रहा है। वे शान्ति लाभांश जैसे जुमलों से ज्यादा युद्ध लाभांश की हकीकत में यकीन रखते हैं। इसलिए संधिपत्र की स्याही सूखने से पहले उन्होंने वारसा संधि और सोवियत संघ से अलग हुए देशों को यूरोपीय संघ और नाटो में शामिल करने की मुहीम तेज कर दी। अब तक वारसा पैक्ट में शामिल देश और पूर्व सोवियत संघ के खेमे से अलग हुए-- पोलैंड, हंगरी, बुल्गारिया, लिथुआनिया, लाटविया, एस्तोनिया, रोमानिया, स्लोवेनिया, स्लोवाकिया, चेक गणराज्य, अल्बानिया, क्रोएसिया, मोन्तेगारो आदि नाटो में शामिल कर लिये गये। इन देशों की सैनिक शक्ति को बढ़ाने के नाम पर उनको भारी कर्ज दिया गया और वहाँ के नागरिकों की सामाजिक सुरक्षा और जरूरी सेवाओं में कटौती की गयी। अकेले पोलैंड ने अपनी शैन्य शक्ति बढ़ाने के लिए अमरीकी युद्ध सामग्री खरीदने पर 6 अरब डॉलर खर्च किया। नाटो के इस विस्तार का नजीजा यह हुआ कि रूस की घेरेबन्दी जारी रही और उसकी सरहद से लगभग 150 किलोमीटर दूर पोलैंड में नाटो का मिसाइल बेस स्थापित कर दिया गया।

अमरीकी चौधराहट में जिस नयी विश्व व्यवस्था और नव उदारवादी व्यवस्था की बुनियाद रखी गयी, उसके एक पैरोकार थॉमस फ्रीडमैन ने 1999 में यूगोस्लाविया पर बमबारी के बाद लिखा था-- "बाजार का छिपा हुआ हाथ कभी भी अदृश्य घूँसे के बिना काम नहीं करेगा। अमरीकी वायु सेना एफ-15 के डिजाइनर मैकडॉनेल डगलस के बिना मैकडॉनल्ड्स फूड का कारोबार फल-फूल नहीं सकता। और सिलिकॉन वैली की प्रौद्योगिकियों के फलने-फूलने के लिए दुनिया को सुरक्षित रखने वाले अदृश्य घूँसे को अमरीकी सेना, वायु सेना, नौसेना और मरीन कॉर्प्स कहा जाता है।" यह साम्राज्यवादियों के असली मकसद, मुनाफाखोरी और सामरिक शक्ति के विस्तार पर बेबाक टिप्पणी है। साथ ही यह ख्रुश्चेव से लेकर गोर्वाचेव तक शान्ति के पुजारियों की हकीकत को जमीन पर पटक देने वाला वक्तव्य भी है।

जहाँ तक यूक्रेन में पश्चिमी साम्राज्यवादियों की दखलन्दाजी का सवाल है, इसका मकसद रूस को घेरने और वहाँ नाटो का सैनिक अड्डा स्थापित करना है। अमरीकी सरकार ने पिछले बीस वर्षों के दौरान वहाँ दो बार तख्तापलट करवाया और एक गृह युद्ध को हवा दी जिसमें 14,000 यूक्रेनी, खास तौर पर रूसी भाषा-भाषी नागरिक मारे गये। यूक्रेन में पहला अमरीका समर्थित तख्तापलट 2004 में हुआ, जब साम्राज्यवाद समर्थित राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार विक्टर युश्चेन्को चुनाव हार गये। चुनाव में जीत हासिल करने वाले विक्टर यानुकोविच को पश्चिमी सरकारों ने रूस समर्थक बताते हुए चुनाव में धाँधली का बहाना बनाकर उनकी जीत को अस्वीकार किया। उसके बाद अमरीका और यूरोप समर्थित ताकतों ने यूक्रेन में "नारंगी क्रान्ति" को अंजाम दिया और दिसम्बर में वहाँ दुबारा चुनाव करवाया तथा अपने चहेते युश्चेन्को को राष्ट्रपति घोषित किया।

'द गार्जियन' ने "ऑरेंज रिवोल्यूशन" को "एक अमरीकी साजिश का नतीजा" बताया था जिस पर कम से कम 1.4 करोड़ डॉलर खर्च किया गया। 'द गार्जियन' ने लिखा था कि "अमरीकी सरकार के पैसे, अमरीकी सलाहकारों, राजनयिकों, दो बड़े अमरीकी दलों और अमरीकी गैर-सरकारी संगठनों के दम पर संगठित इस तख्तापलट मुहीम के जरिये चार वर्षों में "चार देशों में" सरकारों को गिराने का प्रयास किया गया-- सर्बिया, जॉर्जिया, बेलारूस और यूक्रेन।

अपने पहले कार्यकाल के दौरान युश्चेन्को ने आईएमएफ की नीतियों-- आर्थिक मितव्ययिता कार्यक्रम को लागू किया, सामाजिक सेवाओं पर खर्च कम कर दिया, बड़े बैंकों को बचाने के लिए पैसा दिया, कृषि को नियंत्रित किया, नाटो सदस्यता की वकालत की, और रूसी बोलने वाले भाषाई अल्पसंख्यकों के अधिकारों का हनन किया। अगले राष्ट्रपति चुनाव, 2010 में, युश्चेन्को को केवल 5 प्रतिशत वोट मिला, जिससे जाहिर होता है कि युश्चेन्को जनता में कितने अलोकप्रिय थे। 2010 के राष्ट्रपति चुनाव में विक्टर यानुकोविच विजयी हुए, जिन्हें पश्चिमी मीडिया रूस समर्थक बताता था, लेकिन वास्तव में वे कभी रूस और कभी अमरीका की ओर झुक जाते थे।

लेकिन 2013 में, यानुकोविच ने यूक्रेन को यूरोपीय संघ में मिलाने से सम्बन्धित एक समझौते पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। ब्रुसेल्स ने माँग की थी कि कीव नव उदारवादी ढाँचागत समायोजन लागू करे, सरकारी सम्पत्तियों को बेच दे और वाशिंगटन के नेतृत्व वाले अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) को यूक्रेनी सरकार के खर्च पर और पहले से ज्यादा नियंत्रण कायम करने दे।

जब यानुकोविच ने रूस के प्रति झुकाव दिखाते हुए पश्चिमी ताकतों के शर्तनामों को अस्वीकार कर दिया, तब एक बार फिर, पश्चिम समर्थित संगठनों ने सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए अपने समर्थकों को कीव के 'मैदान स्क्वायर' में उतारा।

जिस तरह 2004 में "नारंगी क्रान्ति" के दौरान किया था, अमरीका ने 2013 के अन्त और 2014 की शुरुआत में सरकार विरोधी प्रदर्शन के नेताओं से मिलने के लिए अपने राजनेताओं को भेजा। अमरीकी सीनेटर जॉन मैक्केन, क्रिस मर्फी इत्यादि ने मैदान में भारी भीड़ के सामने अपनी बात रखी। उन के साथ मिलकर यूक्रेन के स्वोबोदा (एक नव-नाजी पार्टी) और राइट सेक्टर (फासीवादी संगठनों का गठबन्धन) जैसे संगठनों के नेताओं ने प्रदर्शनकारियों से बात की। फरवरी 2014 के हिंसक तख्तापलट में इनकी अगुआ भूमिका थी।

अमरीका समर्थित बलों और फासीवादियों की सफलता के साथ, राष्ट्रपति यानुकोविच देश छोड़कर रूस भाग गये। अमरीकी

सरकार के अधिकारियों ने तख्तापलट के नेताओं से मुलाकात की और नयी सरकार का नेतृत्व करने के लिए दक्षिणपंथी नवउदारवादी, आर्सेनी यात्सेन्युक को नियुक्त किया।

2014 के तख्तापलट के बाद आयी सरकार ने देश में वामपंथी दलों पर प्रतिबन्ध लगाया और रूसी भाषाभाषी-अल्पसंख्यकों के अधिकारों को पहले से भी कम कर दिया। दूसरी ओर, यूक्रेनी नव-नाजीवादियों ने पूरे देश में सड़कों पर किये जा रहे तख्तापलट विरोधी प्रदर्शनों पर हमला किया। इन्हीं प्रदर्शनों के दौरान, डोनेट्स्क और लुहान्स्क की जनता ने, जहाँ रूसी भाषियों की संख्या ज्यादा है, यूक्रेन सरकार का विरोध करना शुरू किया और यूक्रेन से दोनों इलाकों की स्वतंत्रता की घोषणा की। तख्तापलट से बनी यूक्रेनी सरकार ने वहाँ सेना भेजकर विद्रोह का दमन शुरू कर दिया।

कई यूक्रेनी सैनिकों ने अपने ही देशवासियों पर गोली चलाने से इनकार कर दिया। यूक्रेनी सेना की बेअदबी को देखते हुए, वहाँ अजोव, ऐदर, निप्रो, टॉरनेडो, जैसे नव-नाजीवादी "प्रादेशिक रक्षा बटालियन" का गठन किया गया। उनको डोनेट्स्क और लुहान्स्क में तैनात किया गया, जिन्होंने हजारों रूसी भाषी यूक्रेनियन को मार दिया। मई 2014 में, नव-नाजियों और प्रान्तीय बलों ने वहाँ के प्रमुख शहर ओडेसा में तख्तापलट विरोधी प्रदर्शन पर हमला किया और श्रमिक संघ की इमारत में 48 लोगों को जिन्दा जला दिया। इस हत्याकांड ने गृहयुद्ध की आग में घी का काम किया। यूक्रेनी सरकार ने इस घटना की जाँच करने का वादा किया, लेकिन वास्तव में कभी जाँच नहीं की।

2014 के दक्षिणपंथी तख्तापलट के बाद, यूक्रेन में एक फर्जी चुनाव कराया गया, और पश्चिम समर्थित अरबपति पेट्रो पोरोशेंको को राष्ट्रपति बनाया गया। उसने कई विपक्षी दलों पर प्रतिबन्ध लगा दिया और जब उन्होंने संगठित होने की कोशिश की, तो उन पर सरकारी मदद से अमरीकापरस्त धुर दक्षिणपंथियों ने हमला किया।

अपने पश्चिमी आकाओं को खुश करने के लिए पोरोशेंको ने विश्व युद्ध के उन दिग्गजों को पुरस्कार दिया, जो नाजी जर्मनी गठबन्धन मिलिशिया जैसे फासीवादी यूक्रेनी संगठन और यूक्रेनी विद्रोही सेना में शामिल थे।

यूक्रेनी सरकार ने उन नेताओं को भी सम्मानित किया, जिन्होंने दूसरे विश्व युद्ध के दौरान हजारों यहूदियों, रूसियों और अन्य अल्पसंख्यकों का नरसंहार करवाया था।

यूक्रेनी सरकार के आँकड़ों के अनुसार, 2014 से 2019 तक, लुहान्स्क और डोनेट्स्क के संयुक्त भौगोलिक क्षेत्र डोनबास में पाँच वर्षों के गृह युद्ध में 13,000 से अधिक लोग मारे गये थे और कम से कम 28,000 घायल हुए थे। ये रूसी भाषी यूक्रेनियन थे जिन पर अपनी ही सरकार द्वारा कहर ढाया गया था, जिसके लिए यूक्रेन के नव-नाजी शासक जिम्मेदार थे। संयुक्त राज्य अमरीका ने इस नरसंहार में यूक्रेनी सरकार का पुरजोर समर्थन किया।

2019 के चुनाव में, यूक्रेन की जनता ने पोरोशेंको के खिलाफ भारी मतदान करके इस नरसंहार का विरोध किया। वर्तमान यूक्रेनी राष्ट्रपति व्लादिमिर जेलेंस्की को 73 प्रतिशत वोट मिले, जबकि पोरोशेंको को केवल 24 प्रतिशत।

जेलेंस्की ने पहले बढ़-चढ़कर शान्ति की बात की, लेकिन सत्ता में आने के बाद उसका सुर बदल गया। अपने पश्चिमी आकाओं के इशारे पर नाचते हुए उसने नव-नाजियों के कहर और गृह युद्ध का समर्थन करना जारी रखा।

यूक्रेनी सरकार सीधे नाजीवादियों द्वारा नहीं चलायी जाती है, लेकिन यूक्रेन में नाजीवादी ताकतों का राज्य में महत्त्वपूर्ण प्रभाव है। 2014 के अमरीकी समर्थित तख्तापलट के बाद, नव-नाजियों को यूक्रेन की सेना, पुलिस और सुरक्षा तंत्र में शामिल कर लिया गया था। यही कारण है कि चुनाव में भले ही उनको बहुत कम वोट मिलते हों, लेकिन राज्य की संस्थाओं और सुरक्षा बलों से इनको भरपूर समर्थन मिलता है।

2014 से 2022 तक, गृहयुद्ध के आठ वर्षों में यूक्रेन में नाजीवादियों की स्थिति काफी मजबूत हुई। जेलेंस्की यहूदी है, लेकिन वहाँ राज्य सुरक्षा तंत्र में नव-नाजियों का प्रबल प्रभाव है। उन्होंने सेना और पुलिस में सुनियोजित तरीके से घुसपैठ की है और उन्हें पश्चिमी साम्राज्यवादी सरकारों और नाटो से सहयोग और प्रशिक्षण भी मिलता है।

जेलेंस्की अमरीका और नाटो की सभी शर्तों का आँख मूँद कर पालन करता है, चाहे अपने चुनावी वादों के विपरीत यूक्रेन में गृह युद्ध जारी रखना हो, नाटो सदस्यता का समर्थन करना हो, 2015 के मिन्स्क समझौते की अनदेखी करनी हो, या पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों से युद्ध सामग्री खरीदना हो। जाहिर है कि इन सभी शर्तों का मकसद रूस की सामरिक घेरेबन्दी और यूरेशिया में नाटो की पैठ बढ़ाना है।

ऊपर जितने तथ्य दिये गये हैं उनके आलोक में यह समझना कठिन नहीं कि रूस ने यूक्रेन पर सुरक्षात्मक हमला किया है, क्योंकि अमरीकी खेमे और नाटो ने उसे धक्के मारते-मारते दीवार से सटा दिया जिससे पीछे जाना सम्भव ही नहीं था। युद्ध छिड़ने के बाद नाटो गठबन्धन ने यूक्रेन के साथ क्या किया, किस तरह पुदीने की डाल पर चढ़ाकर हाथ खींच लिया, यह जगजाहिर है। क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि वे सीधे रूस के खिलाफ मोर्चे पर खड़े हों और तीसरे युद्ध को न्योता दें, जो तय है कि नाभिकीय महायुद्ध होता।

रूस हमला कर रहा है और अमरीकी खेमा प्रतिबन्ध लगा रहा है, डॉलर के मुकाबले रूस का रूबल ऊँचा उठ रहा है, उसका खनिज तेल बिक रहा है, उसका खोया हुआ आत्मविश्वास वापस

आ रहा है।

लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि यह युद्ध साम्राज्यवादी गुटों के बीच का युद्ध है। यह एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था के भीतर उथल-पुथल का इजहार है। यह युद्ध बदलते विश्व शक्ति सन्तुलन की ओर एक महत्त्वपूर्ण संकेत है। यानी, दुनिया अब उसी ढर्रे पर, अमरीकी चौधराहट वाले एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था के ढर्रे पर नहीं चलेगी जिस पर 1990 के बाद उसे चलाने का दावा और प्रयास किया जा रहा था।

पहले विश्व युद्ध के दौरान लेनिन ने कहा था, "यह युद्ध किस लिए लड़ा जा रहा है, जो इनसानियत को बेपनाह तकलीफ दे रहा है? युद्ध में शामिल हर देश की सरकार और पूँजीपति वर्ग, लोगों का ध्यान भटकाने के लिए समाचार पत्रों पर लाखों रूबल बर्बाद कर रहे हैं ताकि दुश्मन पर इल्जाम लगाया जा सके, दुश्मन के प्रति लोगों के मन में नफरत पैदा किया जा सके, और झूठ का अम्बार खड़ा किया जा सके ताकि खुद को इस रूप में चित्रित किया जा सके, कि उस पर अन्यायपूर्ण तरीके से हमला किया गया है और अब वह अपना "बचाव" कर रहा है। वास्तव में, यह लुटेरी महाशक्तियों के दो समूहों के बीच एक युद्ध है, और यह उपनिवेशों के बँटवारे, दूसरे राष्ट्रों को गुलाम बनाने और विश्व बाजार में अपने फायदे और सहूलियतों के लिए लड़ा जा रहा है। यह सबसे प्रतिक्रियावादी युद्ध है, आधुनिक गुलाम-मालिकों का युद्ध है जिसका उद्देश्य पूँजीवादी गुलामी को बचाना और मजबूत करना है।" मेरी राय में यही आज भी हो रहा है।

पूँजीवाद के साम्राज्यवादी युग में प्रवेश करने के बाद से ही दुनियाभर में अपना प्रभुत्व कायम करने तथा बाजारों और प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जा जमाने के लिए साम्राज्यवादी देशों और उनकी खेमेबंदियों द्वारा दुनिया की शान्तिप्रिय जनता पर निरन्तर युद्ध थोपा जाता रहा है। यूक्रेन पर रूसी हमला भी अमरीकी साम्राज्यवादी खेमे और उभरते रूसी साम्राज्यवाद के बीच वर्चस्व की लड़ाई है।

जब तक दुनिया में एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का और एक आदमी द्वारा दूसरे आदमी का शोषण जारी रहेगा, तब तक विश्व शान्ति असम्भव है। शोषण मुक्त विश्व ही युद्ध और नरसंहार से मुक्त विश्व होगा।

* * *

रूस-यूक्रेन युद्ध और उसके विश्वव्यापी प्रभावों को विस्तार और गहराई से समझने के लिए इस अंक के अन्त में तीन तथ्यपूर्ण लेख दिये गये हैं– (1) रूस-चीन धुरी और अमरीकी खेमे के बीच बढ़ती दुश्मनी के भावी परिणाम, (2) पश्चिमी साम्राज्यवादियों ने यूक्रेन युद्ध को अपरिहार्य बना दिया और (3) यूक्रेन संकट : अमरीकी चौधराहट वाली विश्व व्यवस्था में चौड़ी होती दरार। उम्मीद है कि उनके आलोक में इस युद्ध को समझने में हमारे पाठकों को सहूलियत होगी। ○

पाठकों से अपील

❑ 'देश-विदेश' अंक 40 आपके हाथ में है। हमारा प्रयास है कि इसे अनियतकालीन पत्रिका की जगह हर तीन माह पर नियमित प्रकाशित किया जाये।

❑ जिन साथियों को पत्रिका निरन्तर डाक से भेजी जा रही है, वे कृपया सूचित करें कि उन्हें पत्रिका मिल रही है या नहीं और उन्हें आगे से भेजी जाये या नहीं।

❑ देश-विदेश अव्यवसायिक पत्रिका है। यह साथियों के श्रम और सहयोग से ही प्रकाशित होती है। आर्थिक संकट से जूझते हुए अब तक हमने 40 अंक निकाले। पाठकों के सहयोग से ही यह सम्भव हो पाया।

❑ पत्रिका अभी भी अनियमित है, इसलिए नियमित चन्दे की दर तय करना सम्भव नहीं। डाक से मँगवाने के लिए 4 अंकों की सहयोग राशि 200 रुपये या आजीवन सदस्यता न्यूनतम 2000 रुपये निम्नलिखित बैंक खाते में अन्तरित करें और इसकी सूचना एसएमएस या ईमेल से भेज दें।

नाम : मोहित कुमार
मोबाइल नं. 8755762077
AC. No. : 30456084252
IFSC : SBIN0002292
स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया (एसबीआई),
एलम, शामली, उत्तर प्रदेश

मनी ऑर्डर भेजने का पता है-

अतुल कुमार गुप्ता
1/4649/45 बी, गली नं. 4,
न्यू मॉर्डन शाहदरा
दिल्ली- 110032

निजीकरण की राह पर रेलवे

-- जे एन शाह

भारतीय रेल प्रतिदिन ऑस्ट्रेलिया की पूरी आबादी के बराबर यानी ढाई करोड़ लोगों को एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचाती है। 34 लाख मीट्रिक टन माल की प्रतिदिन ढुलाई करती है। यह पर्यावरण के लिए भी सुरक्षित है और कम खर्चीली सेवा है। इसके पास 76 हजार किलोमीटर की ट्रैक, 7,350 स्टेशन, 13 लाख नियमित कर्मचारी तथा लगभग इतने ही अनियमित कर्मचारी हैं। इसके अलावा विशाल श्रमिक क्षमता, इलेक्ट्रिक तथा डीजल लोकोमोटिव के विशाल जखीरे की बदौलत यह भारतीय अर्थव्यवस्था का महत्त्वपूर्ण स्तम्भ है।

निजीकरण का चक्र

इतने विशाल नेटवर्क और आधारभूत ढाँचे के बावजूद विगत आम बजट में वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने संकेत दिये हैं कि आने वाले दिनों में रेलवे को अपनी अहम परियोजनाओं को पूरा करने के लिए पीपीपी (प्राइवेट-पब्लिक पार्टनरशिप) की राह पकड़नी होगी। उन्होंने यह भी बताया कि 2030 तक भारतीय रेल को अपनी विभिन्न योजनाओं को पूरा करने के लिए 50 लाख करोड़ रुपये के निवेश की दरकार होगी जो मौजूदा संसाधनों की गति से सम्भव नहीं हो पाएगा। इसके तत्काल बाद रेलवे जो पहले से ही निर्माण, चिकित्सा, साफ-सफाई, नये ट्रैक बिछाने, कारखानों, रनिंग रूमों आदि विभागों में निजी भागीदारी को ला चुकी थी, यात्री गाड़ियों के परिचालन जैसे संरक्षा-सुरक्षा से जुड़े क्षेत्र में भी निजी भागीदार की उपस्थिति सुनिश्चित करते हुए पीपीपी मॉडल अपनाकर मई 2019 में 100 डेज एक्शन प्लान को बिना देरी किये लागू कर दिया। इसमें लखनऊ से नयी दिल्ली के बीच पहली निजी भागीदारी वाली तेजस ट्रेन चली।

100 डेज एक्शन प्लान क्या है?

कोई यह सोच रहा है कि डिब्बों में भेड़-बकरियों की तरह ठुँसकर, अत्यन्त दारुण अवस्था में यात्रा करने वाले गरीब-प्रवासी मजदूरों का भला होने वाला है, रेलवे की यात्रा सुरक्षित, दुर्घटना मुक्त होने वाली है, रेलवे के संरक्षा श्रेणी समेत विभिन्न श्रेणियों के 2.6 लाख खाली पड़े पद भरे जाने वाले हैं तो उन्हें यह भ्रम त्याग देना चाहिए। मौजूदा सरकार इन छोटे-मोटे कामों के लिए नहीं आयी है।

-- पिछले दिनों अप्रत्याशित तीव्रता (जो शायद ही किसी अन्य सरकारी योजना में दिखती हो) दिखलाते हुए रेलवे ने मई 2017 में निजी क्षेत्र की भागीदारी वाली पहली तेजस ट्रेन (लखनऊ-नयी दिल्ली) को हरी झंडी दिखायी जो आज अन्य तीन महत्त्वपूर्ण मार्गों-- मुम्बई-अहमदाबाद, मदुरई-चेन्नई, मुम्बई-गोवा के बीच परिचालित है।

-- देश के 150 यात्री ट्रेनों के परिचालन के लिए निजी ऑपरेटरों से बोली लगाने वाली ईओआई (एक्सप्रेसन ऑफ इण्टरेस्ट) की माँग की गयी है।

-- रेलवे की सात महत्त्वपूर्ण उत्पादन इकाइयों-- चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स (बंगाल), डीजल रेल कारखाना (वाराणसी), मॉडर्न कोच फैक्ट्री (रायबरेली), रेल कोच फैक्ट्री (कपूरथला), डीजल मॉडर्नाइजेशन वर्कशॉप (पटियाला), इण्टीग्रल कोच फैक्ट्री (चेन्नई) और व्हील एंड एक्सल प्लाण्ट (बेंगलुरु) का निगमीकरण करते हुए उन्हें 'इंडियन रौलिंग स्टाक कम्पनी' के नाम से निजी क्षेत्र में दे देने का मार्ग प्रशस्त किया जाना है।

-- रेलवे को कोर और नॉन-कोर सेक्टर में बाँटकर अस्पतालों, स्कूलों, कारखानों, रेलवे पुलिस आदि महकमों को अगले 100 वर्षों के लिए निजी क्षेत्र के हवाले कर दिये जाने की 'विवेक देवराय कमेटी' की सिफारिशों को अमलीजामा पहनाना है।

-- देश के लगभग 23 महत्त्वपूर्ण रेलवे स्टेशन जिनमें दिल्ली, मुम्बई, बेंगलुरू, इलाहाबाद, कानपुर, चेन्नई, भोपाल, हावड़ा जैसे बड़े शहरों के स्टेशन जो बेहद कमाई वाले हैं, आदि को शामिल करते हुए उन्हें पूरी तरह से निजी उद्योगपतियों को सौंप देने की योजना पर अमल शुरू भी हो गया है, जिनमें सिर्फ परिचालन से सीधे जुड़े कर्मी ही रेल के रहेंगे।

-- देश के लगभग 600 रेलवे स्टेशनों के आसपास की जमीन 100 वर्षों के लिए निजी उद्योगपतियों को औने-पौने दामों में दिये जाने की कार्य योजना पर अमल शुरू हो गया है, जहाँ वे अपने निजी व्यवसायिक प्रतिष्ठान विकसित करेंगे। इसके लिए रेल मंत्री द्वारा लैंड डेवलपमेण्ट प्राधिकरण को

2020-21 का समय दे दिया गया है जिसमें कमर्शियल साइट्स के 21 स्थानों के लिए 2,400 करोड़, 25 रेलवे कॉलोनियों की बिक्री के लिए 3,300 करोड़ और 22 स्टेशनों की रिडेवलपमेण्ट के लिए 12,000 करोड़ रुपये 'अप फ्रण्ट प्रीमियम' रखा गया है। यह वित्त मंत्रालय की 9 जुलाई 2020 की बैठक में तय कर दिया गया था।

-- रेलवे बोर्ड का पुनर्गठन कर एक स्वतंत्र नियामक संस्था (आरआरएआई) का गठन प्रस्तावित है।

सरकार की असली मंशा

इन सबके पीछे सरकार की मंशा आखिर क्या है? इसे समझने के लिए हमें देश में 1991 के बाद अपनायी गयी 'नयी आर्थिक नीति' तथा इसके मूल सूत्रों-- उदारीकरण, निजीकरण तथा भूमंडलीकरण के पीछे की ताकतों की मंशा को समझना जरूरी है। हालाँकि जहाँ से इन नीतियों की शुरुआत हुई, आज लगभग तीस बरसों बाद वही देश अब इन नीतियों के घातक परिणामों को भुगत रहे हैं और इनके गुब्बारे की हवा निकल जाने के बाद घोंघे की तरह फिर से नेशन फर्स्ट, ब्रेक्जिट का जाप करते हुए पीछे लौटने की चर्चा कर रहे हैं। बावजूद इसके भारत के नीति-निर्माता इन सब आर्थिक नीतियों का हश्र देखते हुए भी रतन टाटा की अगुवाई में "कायाकल्प कमेटी" बनाकर उसकी सिफारिश पर, रेलवे, बीमा, विमानन, बैंकिंग, चिकित्सा जैसी संरक्षा-सुरक्षा से जुड़ी तथा राष्ट्रीय महत्त्व की सामाजिक संस्थाओं को निजी हाथों में सौंपकर उनके मूल स्वरूप को ही समाप्त करने पर तुले हुए हैं।

हालाँकि वाराणसी की एक रैली में डीजल रेल कारखाना के मजदूरों को सम्बोधित करते हुए प्रधान सेवक ने बड़े स्वाभिमानी तरीके से स्वयं को रेल से जोड़ते हुए इसके निजीकरण की किसी भी सम्भावना से दूर-दूर तक इनकार किया था और ऐसी चर्चाओं को देशवासियों को गुमराह करने वाला बताया था।

निजीकरण-निगमीकरण के पीछे सरकार की दलील

रेलवे के निगमीकरण-निजीकरण के पीछे सरकार कई दलीलें देती है। पहली, रेलवे की भावी परियोजनाओं को पूरा करने के लिए सरकार के पास पर्याप्त संसाधन उपलब्ध नहीं है। यदि भावी परियोजनाओं समेत वर्तमान उपक्रमों (ट्रेनों, रेल-पथों, अस्पतालों, स्टेशनों, स्कूलों, कारखानों, उत्पादन इकाइयों) का निजीकरण या निगमीकरण किया जाता है तो उन परियोजनाओं, उपक्रमों के विकास की जिम्मेदारी निगम या निजी भागीदार की होगी जो स्वयं धन जुटाएँगे तथा खर्च उठाएँगे और सरकार की ज्यादा जिम्मेदारी नहीं होगी। (मिनिमम गवर्नमेण्ट मैक्सिमम गवर्नेंस) दूसरी, कुशल, निष्ठावान, समर्पित रेलकर्मियों का अभाव है। तीसरी, रेलवे का परिचालन अनुपात (ऑपरेटिंग रेसियो) काफी ज्यादा हो गया है। चौथी, दबी जुबान से रेलवे की बदतर हालत के लिए अफसरशाही को भी जिम्मेदार ठहराया जाता है।

ये सभी दलीलें खोखली तथा भ्रामक हैं। रेलवे की सबसे प्रमुख आय का स्रोत (64 प्रतिशत) माल ढुलाई है। दूसरा स्रोत (28 प्रतिशत) लम्बी दूरी की मेल एक्सप्रेस ट्रेनों से आय है। साथ ही स्टेशन परिसरों से आय (8 प्रतिशत) है। विगत वित्त वर्ष 2019-2020 में रेलवे ने एक अरब मीट्रिक टन से ज्यादा माल ढुलाई की, जिसमें औसतन 9,000 गुड्स ट्रेनों ने प्रतिदिन 30 लाख मीट्रिक टन माल ढुलाई की जो एक रिकॉर्ड ही है। उसी प्रकार वर्ष 2019-2020 में रेलवे की मेल और सवारी गाड़ियों ने 8.44 अरब यात्रियों को देश के विभिन्न कोनों से उठाकर एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचाया। इस प्रकार 2019-2020 में गुड्स ट्रेनों से रेलवे ने 1,29,750 करोड़ तथा यात्री ट्रेनों से 53,399 करोड़ रुपये किराये से कमाये। यह आय सारी रेल परियोजनाओं जैसे विद्युतीकरण, गेज कन्वर्जन, दोहरीकरण, तिहरीकरण, नयी रेल लाइन बिछाने के बावजूद हुई है। बजटीय आँकड़े के अनुसार रेलवे का 2019-20 का परिचालन अनुपात 96.2 प्रतिशत का रहा, जिसे आगे और कम करने का लक्ष्य रखा गया है। यह आय रेलवे के लगभग 12.5 लाख कर्मचारियों को वेतन तथा इतनी ही संख्या में पेंशनर्स को पेंशन देने के बाद हुई। यहाँ पर रेलवे द्वारा परिचालन अनुपात की बात करना बेमानी है क्योंकि जब रेलवे को अपना भाड़ा तय करने की अनुमति नहीं है, तो रेलवे पर आपरेटिंग रेसियो बढ़ाने का आरोप नहीं मढ़ा जा सकता है।

यदि रेलवे के व्यय का लेखा-जोखा किया जाये तो इस ऑपरेटिंग रेसियो के बढ़ने में सबसे ज्यादा हिस्सा फिजूलखर्ची का है। अनावश्यक योजनाओं तथा रेलवे स्टेशनों, कार्यालयों के सौन्दर्यीकरण पर राजनीतिक लाभ के लिए देश भर में रेलवे पानी की तरह पैसा खर्च कर रही है। स्टेशनों को विश्वस्तरीय बनाने के नाम पर अच्छे-खासे भवनों, परिसरों, रोड्स को तोड़कर उनकी जगह नया निर्माण किया जा रहा है। देश में हजारों समपार फाटकों को मानवरहित कर उनकी जगह अंडरपास बनाये जा रहे हैं। हालाँकि एक सर्वे के अनुसार अनुमानित 14 करोड़ (एक अंडरपास का) खर्च करने के बाद भी देश के सैकड़ों अंडरपास वर्ष के अधिकांश दिनों में जल भराव के चलते किसी काम के नहीं रहते। इसी तरह करोड़ों का खर्च गैर योजनागत मदों में भी प्रतिवर्ष होता है। यदि इन फिजूलखर्ची पर रोक लगे तो परिचालन अनुपात सुधारा जा सकता है, लेकिन सरकार इन पर रोक लगाने से हमेशा कतराती है तथा राजस्व कमी का बहाना बनाकर निजीकरण, पीपीपी, निगमीकरण का मार्ग प्रशस्त करती रही है।

सच्चाई यह है कि आज निजी तथा कॉर्पोरेट पूँजी का संकट राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर उस मुकाम तक पहुँच चुका है और सरकार के बाहर और भीतर इन धनकुबेरों, कॉर्पोरेट्स की दखल

इस हद तक हो चुकी है कि सरकार उनके आर्थिक संकट को, उनके मुनाफे के प्रतिशत के संकट को रेल का संकट बताकर देश की जीवनरेखा को उनके व्यक्तिगत हितों की रक्षा के लिए बलि चढ़ाने पर उतारू हो चुकी है।

निजीकरण-निगमीकरण कोई समाधान नहीं

सार्वजनिक उपक्रमों का निजीकरण संकट का कोई स्थायी समाधान है ही नहीं क्योंकि कॉर्पोरेट देश के प्रति अपनी जवाबदेही के लिए निवेश नहीं करता, बल्कि सिर्फ मुनाफा कमाने की अपनी चिरन्तन भूख के लिए निवेश करता है। मुनाफे की हवस पालने के कारण उनके द्वारा नियंत्रित, संचालित उपक्रमों के सर्वसुलभ सस्ता होने की उम्मीद नहीं की जा सकती है। हाल के घटनाक्रम में लखनऊ-नयी दिल्ली के बीच संचालित प्रथम निजी रेलगाड़ी 'तेजस एक्सप्रेस' का किराया उसी दूरी तथा इतने ही समय (सिर्फ 25 मिनट का अन्तर) का इस प्रकरण को समझने के लिए पर्याप्त है। यात्रा किराया रुपये में--

	शताब्दी एक्सप्रेस	तेजस एक्सप्रेस
एसी चेयर कार	970/- (फिक्स्ड)	1280/-
एसी प्रथम श्रेणी	1935/- (फिक्स्ड)	*2450/-
डायनेमिक प्राइसिंग	कोई योजना नहीं	**4325/-

*एक्जीक्यूटिव क्लास

**अब तक अधिकतम

बड़ी बात यह है कि बगैर आधारभूत ढाँचा (पटरी, सिग्नल, स्टेशन, डिब्बे रेलवे के ही हैं) खड़ा किये सिर्फ थोड़ी पूँजी लगाकर अकूत मुनाफा कमाने का इससे सरल जरिया और क्या हो सकता है? जनता की सालों की मेहनत और देश के संसाधनों से खड़े किये सार्वजनिक उपक्रम के मजबूत ढाँचे का प्रयोग तो वे मुनाफे के लिए निर्बाध रूप से कर रहे हैं और जब उपक्रम घाटे में आ जाते हैं तो सरकार की सहायता से ही वे उनसे पिंड भी छुड़ा लेते हैं, यानी मुनाफे का निजीकरण और घाटे का सार्वजनिकरण।

दूरसंचार के क्षेत्र में बीएसएनल, एमटीएनएल और निजी क्षेत्र के भी नामचीन किंगफिशर, जेट एयरवेज, बैंकिंग में यस बैंक के हश्र इनके ज्वलन्त उदाहरण हैं। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि वर्तमान दौर के आर्थिक सुधार, ढाँचागत समायोजन, राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय पूँजी और हुकूमत के गठजोड़ के गम्भीर संकट का सामना करने की प्रतिक्रिया के तौर पर ही हैं।

बहुप्रचारित, रेलवे की महात्वाकांक्षी योजना, डेडिकेटेड फ्रेट कोरिडोर जिसके अन्तर्गत पाँच मालगाड़ी रूट-- ईस्टर्न डेडीकेटेड फ्रेट कोरिडोर (लुधियाना से कोलकाता, 1800 किमी), वेस्टर्न डेडीकेटेड फ्रेट कोरिडोर (दादरी से जेएनपीटी, 1500 किमी), ईस्ट कोस्ट कोरिडोर (खड़गपुर से विजयवाड़ा, 1000 किमी), साउथ ईस्ट-वेस्ट कोरिडोर (भुसावल से धानकुनी, 1500 किमी), नार्थ-साउथ सब कोरिडोर (विजयवाड़ा से इटारसी, 1500 किमी) बनाये जा रहे हैं, जो आगामी 150 निजी ट्रेनों को चलाने के लिए मार्ग प्रशस्त करने का ही एक उपक्रम है, क्योंकि वर्तमान समय में मालगाड़ियों के परिचालन में ये यात्री सवारी गाड़ियाँ ट्रैफिक कंजेशन (तथाकथित) पैदा कर रही हैं। इस प्रकार एक साथ दो लक्ष्य साधे जा रहे हैं, डेडिकेटेड फ्रेट कोरिडोर पूरी तरह से रेल राजस्व (माल ढुलाई से प्राप्त राजस्व) पर प्रभाव डालेगा तथा मालगाड़ी स्लाट निजी सवारी गाड़ियों के परिचालन के लिए उपलब्ध हो जाएगा।

बड़ी संख्या में नौकरियों में कटौती

रेलवे में 'राइट साइजिंग' के नाम पर निजीकरण, निगमीकरण की योजना पर अमल आज से ढाई दशक पूर्व 1995 में आये पाँचवे केन्द्रीय वेतन आयोग की रिपोर्ट के बाद ही शुरू हो गया था जिसके खिलाफ रेलवे के मान्यता-प्राप्त और गैर मान्यता-प्राप्त यूनियन सब जानते हुए भी कोई मजबूत विरोध का स्वरूप तैयार करने में सफल नहीं हो पाये। रेलवे को 9 जोनों से 16 जोनों में पुनर्विभाजित करना, 10 नये मंडल बनाना, उसी का हिस्सा था, जिससे छोटे-बड़े देशी-विदेशी खरीदार, निवेशक आसानी से रेलवे में अपनी पैठ बना सकें। वर्ल्ड बैंक के ऋण के दबाव में रेलवे बोर्ड पहले ही यह फैसला ले चुका था कि रेल कर्मचारियों की संख्या 18 लाख से धीरे-धीरे 9 लाख पर लानी है। आज इसे लगभग 13 लाख के नीचे लाया जा चुका है। वह भी तब, जब रेलवे का परिचालन बहुत अधिक बढ़ चुका है। आज रेलवे में संरक्षा श्रेणी समेत लगभग 2.6 लाख पद खाली पड़े हैं, लेकिन नयी भर्तियाँ लगभग बन्द हैं। वर्तमान सरकार के 30 मई 2019 के शपथ ग्रहण के दिन ही उत्तर रेलवे के 13 विभागों के लगभग 26,000 पदों को समाप्त करने की घोषणा की गयी जिसकी मुनादी वर्तमान सरकार के पिछले कार्यकाल के अन्तिम दिनों में की जा चुकी थी। ऐसा नहीं है कि रेलवे के इन विभागों के पास काम नहीं रह गया है। दरअसल ये पद इसलिए खत्म किये जा रहे हैं क्योंकि बहुत सारे विभागों में रेलवे ने कार्यों को आउटसोर्स कर दिया है जिससे कर्मचारियों के पास कोई काम नहीं बचा है। इन आउटसोर्स कर्मचारियों से काफी कम वेतन पर, बिना किसी श्रम कानून का अनुपालन किये, कार्य कराये जा रहे हैं तथा रेलवे इसी तरह से अपने सभी काम कराना चाह रही है जिससे उसे न्यूनतम वेतन के साथ ही वे सारी सुविधाएँ भी न देनी पड़े जो रेलकर्मियों ने लम्बे संघर्ष के बाद हासिल की हैं। 2014 में प्रधानमंत्री ने वाराणसी की अपनी विजय सभा में कहा था कि रेलवे को बेचने से पहले वे मर जाना पसन्द करेंगे, पता नहीं उन्हें यह वक्तव्य आज भी याद है या नहीं। निजीकरण देश की पहले से ही वर्गीय, वर्णीय, श्रेणीगत आधार पर विभाजित गैर बराबरी वाली सामाजिक व्यवस्था को फिर

से और मजबूत स्थिति में ले जाने का गम्भीर षड्यंत्र है। आज भी रेल मंत्री लगातार यह बयान दे रहे हैं कि रेलवे में नौकरियों का समाप्त होना देश की अर्थव्यवस्था के लिए अच्छे संकेत हैं।

निजीकरण का मार्ग प्रशस्त करने के लिए आकर्षक सेवानिवृत्ति का प्रस्ताव

विगत वर्षों रेलवे संरक्षा और श्रमसाध्य विभागों से जुड़े परिचालन (लोको पायलट्स, गाड्र्स, ट्रैकमैन) कर्मचारियों के लिए एक सेवानिवृत्ति योजना लारजेस– (लिबरलाइज्ड एक्टिव रिटायरमेण्ट गारण्टेड इम्प्लायमेण्ट फार सेफ्टी स्टाफ) लाया था। इसमें ऐसे लोकोपायलट जिनकी उम्र 55-57 के बीच तथा सेवा अवधि 33 वर्ष पूरी हो चुकी थी, अन्य श्रेणियों के लिए (उम्र सीमा 50-57 के बीच तथा सेवा अवधि 20 वर्ष) हो चुकी थी, उनके शरीरिक फिटनेस के मापदंडों को देखते हुए, उनके आवेदन पर उन्हें सेवानिवृत्ति देने का प्रस्ताव था। इस तरह सेवानिवृत्ति लेने पर, अन्य योग्यताओं के पूरा करने पर, कर्मचारी के एक आश्रित पुत्र-पुत्री को 1900 के ग्रेड पे पर नियुक्ति देने का प्रस्ताव था। एक अच्छी खासी संख्या में लोको पायलटों द्वारा उस योजना का लाभ उठाया गया क्योंकि उनकी नजर में कम से कम एक सरकारी नौकरी की गारण्टी काफी मायने रखती थी। बाद में रेलवे द्वारा, न्यायालय के फैसले के आलोक में इस योजना को बन्द कर दिया गया। हालाँकि न्यायालय के काफी सारे फैसले सरकार अपनी सुविधानुसार ही लागू करती है।

अब जब वर्तमान समय में रेलवे ने अपने हर विभाग के स्थायी कर्मचारियों को हर हालत में कम करने की योजना बना ली है, फिर से एक नयी सेवानिवृत्ति योजना "सैल्यूट"-- (स्कीम फार एडवांस्ड एंड लिबरलाइज्ड अनबर्डेनिंग आफ ट्रैक मेण्टेनर्स/इंजिन पायलट्स) लायी गयी है। इसमें भी इन्हीं दोनों कैटेगेरी (ट्रैकमैन, लोकोपायलट्स) को लक्ष्य किया गया है, क्योंकि अन्य श्रेणियों के रेलवे कर्मचारियों को हटाने (उनके काम संविदा पर कराने) की योजना पर अमल पहले ही हो चुका है। गुड्स एवं यात्री गाड़ियों के परिचालन में भी आनेवाले समय में निजी कर्मचारियों को नियुक्त किये जाने के खतरनाक संकेत विभिन्न माध्यमों से मिल रहे हैं। उसी के परिप्रेक्ष्य में इस सेवानिवृत्ति योजना को देखा जा सकता है। रेलवे हालाँकि उनकी सेवानिवृत्ति के लिए कठिन ड्यूटी, स्वास्थ्य, बढ़ती उम्र, संरक्षा-सुरक्षा के खतरे का हवाला दे रही है, और 60 साल की उम्र तक प्रतिवर्ष तीन सेट सुविधा पास, वार्षिक वेतनवृद्धियों के आधे का लाभ का प्रोत्साहन भी दे रही है, लेकिन आश्रितों की नियुक्ति का कोई प्रावधान इस नयी योजना में नहीं है। रेल महकमे के इन खोखले तर्कों की असलियत तब उजागर हो जाती है जब सेवानिवृत्त किये हुए कर्मचारी को फिर से उसी कार्यालय में मानदेय पर नियुक्त कर लिया गया है।

कर्मचारियों की मनः स्थिति

इन विकट नीतिगत, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों में, बुनियादी श्रमिक अधिकारों को बनाये रखने के लिए कर्मचारियों में संघर्ष, वर्गीय चेतना का घोर अभाव है, कर्मचारी बुझे मन से हर समस्या का हल तलाशते हैं। निराशा, हताशा, कुंठा में सरकार के हर निर्णय को वे निर्विरोध स्वीकार करने लगे हैं। इस कुंठाग्रस्तता, निराशा के पीछे का बुनियादी कारण केन्द्रीय मजदूर यूनियनों का सुधारवाद (उनकी निष्क्रियता, मौकापरस्ती, सुविधावादी सोच, प्रतिक्रियावाद) और संघर्ष से पलायन की मनोवृतित्त है, मजदूरों को यह सब समझने की जरूरत है। सामाजिक सुरक्षा के आधार, पेंशन को समाप्त कर उसकी जगह एनपीएस ला दिये जाने के सवाल पर भी वही हताश जवाब कि "नहीं देगा तो क्या कर लेंगे" आज के मजदूर संगठनों की स्थिति को लेकर गम्भीर सवाल खड़ा करता है। इस तरह का भाव आज नव उदारवादी नीतियों से काफी गहरे तक, समाज के हर तबके तथा संगठित-असंगठित दोनों क्षेत्र के मजदूरों के बीच जम चुका है कि अब कुछ नहीं हो सकता। निजी स्तर पर हर समस्या का हल तलाशने वाली और महज कर्ज के बूते अपने भविष्य की पगार गिरवी रख देनेवाली आज की युवा मजदूरों की कतार शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य, बीमा, आवास, जैसी बुनियादी, मूलभूत जरूरतों के लिए कर्ज के जाल में इस कदर फँस चुकी है कि उसका वर्गीय चरित्र (खोने को कुछ नहीं, पाने को सारी दुनिया) स्वाभाविक रूप से समाप्त हो चला है। संघर्ष के नाम पर, उसके परिणाम का भूत उन्हें सोते-जागते ड्यूटी करते, हमेशा सताता रहता है। एक मजदूर साथी की परेशानी दूसरे को परेशान नहीं करती। रही-सही कसर रेलवे की अफसरशाही पूरा कर दे रही है। अफसरशाही मजदूरों के बीच व्याप्त जातिगत, वर्गीय विषमता का भरपूर का लाभ उठाकर उन्हें आपस में लड़ाकर, अपना मकसद पूरा करती रहती है। इसमें मीडिया तथा संस्थानों की राजनीति उन्हें भरपूर सहयोग करते रहते हैं। उसे वैकल्पिक रास्ता दिखलाना आज के मौकापरस्त मजदूर संगठनों के बूते के बाहर हो चुका है। सार्वजनिक व्यवस्था यानी सबकी मेहनत और भूमिका से सबके लिए मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करते हुए ही हम संकीर्ण कर्मचारी मानसिकता, पूँजीवादी मानसिकता की गम्भीर बीमारी से बाहर निकलकर वैकल्पिक रास्ते की तरफ बढ़ सकते हैं।

ट्रेड यूनियनों की भूमिका का सवाल

ऐतिहासिक रूप से भारत में ट्रेड यूनियनों, मजदूर आन्दोलनों का जो उभार रहा है वह व्यापक स्तर पर एकता और संघर्ष के सिद्धान्त का प्रयोग ही रहा है। सैद्धान्तिक, अपरिहार्य व्यवहारिक-विभाजनों के बीच केन्द्रीय श्रम संगठनों तथा सेक्टरवार फेडरेशनों का संयुक्त मंच ही कोई मजबूत (1974, 1981) चुनौती सरकार को दे पाया है। आज इस प्रक्रिया में गम्भीर भटकाव और विकृति आ चुकी है। स्वतंत्र पहलकदमियों और संयुक्त कार्रवाई

के बीच सन्तुलन या सामंजस्य की कमी, श्रमिक वर्ग की वैचारिक पहचान और व्यापक वर्ग एकता के बीच सन्तुलन की कमी, नियोक्ता के खिलाफ आर्थिक संघर्ष तथा सरकार की नीतियों से उनके सम्बन्ध की बारीक पहचान की कमी, आज सबसे महत्त्वपूर्ण सवाल हैं जिनसे आज का रेल मजदूर आन्दोलन तथा उसका नेतृत्व पूरी तरह से विमुख हो चुका है।

मजदूर वर्ग की मुक्ति के लक्ष्य को लेकर शुरू हुआ मजदूर आन्दोलन आज सम्मानजनक वेतन, एक समान वेतन, न्यूनतम वेतन के रास्ते आज "कोई श्रमिक अधिकार नहीं" की दहलीज तक पहुँच चुका है। मशीनरी मजदूर वर्ग के बीच मजबूत और कमजोर बिन्दुओं को एक दूसरे के खिलाफ खड़ा कर दे रही है। इसमें मजदूरों की एक समान कार्यपरिस्थितियाँ लेकिन पृथक वर्गीय पृष्ठभूमि सबसे बड़े कारक हैं। ट्रेड सम्बन्धी संकुचित मनोवृत्ति, अराजनीतिकरण, वर्गीय चेतना का अभाव, उपभोक्तावाद, आदि ने आज रेल मजदूरों की स्थिति एक ऐसे मशीनीकृत इंसान के रूप में कर दी है कि उसकी "प्रोग्रामिंग" व्यवस्था जैसा चाहे वैसा कर ले रही है।

विनिवेश, तात्कालिक आर्थिक सुधारों, ठेकाकरण के द्वारा, रेलवे के कारखानों, स्टेशनों, रनिंग रूमों में कैजुएल वर्कर्स (उसमें भी महिला कर्मियों की भारी संख्या) की ऐसी फेहरिस्त ला दी गयी है, जो बिलकुल ही मजदूर वर्ग की चेतना से विलग है।

नेतृत्व, संगठन, सदस्य सब आज एक दूसरे के ऊपर अविश्वास और दोषारोपण करते हैं और इसके पीछे वाजिब, ठोस कारण भी हैं। आज मौकापरस्त या प्रतिक्रियावादी और अपने को क्रान्तिकारी कहने वाली ट्रेड यूनियनों के बीच की विभाजन रेखा लगभग क्षीण हो चुकी है।

अब मजदूर आन्दोलन को अपनी कार्यप्रणाली, योजना (शार्ट टर्म-लांग टर्म) में व्यापक परिवर्तन लाते हुए संगठित मजदूरों के साथ असंगठित मजदूरों, चाहे वे सरकारी, सार्वजनिक क्षेत्र में हो या निजी क्षेत्र में, साथ लेकर उन्हें वर्गीय चेतना से लैस कर व्यापक एकता बनाने की जरूरत है। अपना वजूद बचाने, मान्यता बचाने की जद्दोजहद से जूझ रही ट्रेड यूनियनों से आज कुछ भी उम्मीद करना बेमानी है। सबसे बड़ा सवाल उनके बीच आज नेतृत्व के संकट का खड़ा हो गया है। सक्षम नेतृत्व का अभाव तथा उसके परिणामस्वरूप संगठन के सदस्यों का नेतृत्व के प्रति नजरिया आज एक काफी निराशाजनक माहौल बना डालने में महती भूमिका निभा रहे हैं। साथ ही साथ नेतृत्व के लिए विकल्पहीनता का माहौल भी पैदा हो गया है क्योंकि सक्षम, जुझारू, प्रतिबद्ध, नेतृत्व संघर्षों से पैदा होता है और जमीनी स्तर पर ठेठ संघर्ष कहीं हो नहीं रहा है। जो हो रहा है वह महज रस्मी और खानापूर्ति के लिए हो रहा है। वर्गीय चेतना के अभाव में भावनात्मक रूप से जुड़ने वाली कतारें एक झटके के बाद कहाँ छू मन्तर हो जाती है, पता ही नहीं चलता। आज अगर आर्थिक, सामाजिक, नीतिगत मसलों पर संघर्ष की योजना बनानी हो तो हमें सबसे पहले अपनी कतारों की राजनीतिक चेतना, वर्गीय चेतना और फिर से नये बदले आर्थिक, सामाजिक परिवेश में नयी ट्रेड यूनियन संस्कृति का ककहरा सबसे पहले पढना-पढ़ाना होगा।

निश्चित रूप से स्थापित मजदूर संघों के नेता कर्मचारियों की उदासीनता को दूर करने और युवा पीढ़ी के मजदूरों को शोषण और जुल्म का प्रतिकार करने के लिए उत्प्रेरित करने में विफल रहे हैं।

मजदूर वर्ग के ऐतिहासिक दायित्व

कोरोना महामारी संकट के दौरान यह उजागर हो गया है कि किसी भी कठिन, असामान्य समय में सरकारी, सार्वजनिक उपक्रम ही आम और खास दोनों नागरिकों के काम आते हैं। निजी अस्पताल, परिवहन, विद्यालय कठिन समय में सबसे पहले मैदान से भागने वालों में होते हैं। जैसा कि अभी तक निजी अस्पतालों में कोरोना मरीजों का भर्ती न लिया जाना कड़वी सच्चाई बयाँ कर रहा है। लाकडाउन में सीमित संसाधनों के बावजूद जान जोखिम में डालकर हमारे सरकारी अस्पताल, उनके डॉक्टर ही काम पर डटे रहे और अपनी जिम्मेदारी निभाते हुए अब तक सैकड़ों डॉक्टर, नर्स अपनी शहादत दे चुके हैं। कारखानों, व्यवसायिक प्रतिष्ठानों के बन्द होने से, बेरोजगारी, भुखमरी के भय से बदहवास, पैदल अपने घरों की ओर भाग रहे कामगारों को सार्वजनिक उपक्रम रेल ने ही अन्तिम समय में उन्हें उनकी मंजिल तक पहुँचाया।

इसलिए अपनी जिम्मेदारी तथा देश के प्रति सच्ची निष्ठा और नागरिकता बोध का परिचय देते हुए मजदूर वर्ग का (अगुवा दस्ता होने के नाते खासकर रेलवे के मजदूरों का) यह महत्त्वपूर्ण कार्यभार बनता है कि राष्ट्रीय महत्त्व के इस सरकारी उपक्रम के निजी हाथों में सौंपे जाने के पीछे के सरकार के मंसूबों को आमजनों के बीच लगातार अभियान चलाकर, बेनकाब करने का बीड़ा उठाये, आगे के दिनों में निजीकरण के विरोध में संघर्ष की तैयारी के लिए समाज के सभी तबकों-- किसानों, छात्रों, बेरोजगारों, महिलाओं के बीच व्यापक एकजुटता बनाये, जिससे वर्षों के बलिदान, खून-पसीने से खड़े किये गये राष्ट्रीय महत्त्व के भारतीय रेल को बचाया जा सके। और अन्त में दुष्यन्त कुमार के शब्दों में--

पक गयी हैं आदतें, बातों से सर होंगी नहीं
कोई हंगामा करो, ऐसे गुजर होगी नहीं
आज मेरा साथ दो, वैसे मुझे मालूम है
पत्थरों में चीख हरगिज कारगर होगी नहीं।

(लेखक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ट्रेड यूनियन के क्षेत्र में गोरखपुर में सक्रिय कार्यकर्ता हैं)

(साभार अग्नि आलोक डॉट कॉम)

क्रिप्टो करेंसी -- साम्राज्यवादी ताकतों के शोषण का हथियार

--प्रो. थोटा ज्योथि रणी

क्रिप्टो करेंसी छद्म, आभासी और डिजिटल मुद्रा है। यह कानूनी रूप से स्वीकार्य (लीगल टेंडर) नहीं है। हाल ही में, पहली क्रिप्टो करेंसी बिटक्वाइन जो 2009 में आयी थी, उसका मूल्य 51 लाख रुपये तक पहुँच गया है, जो इस छद्म मुद्रा के अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर बढ़ते कारोबार और लेन-देन की तरफ इशारा करता है। यह इस बात को ताकत देता है कि "क्रिप्टो करेंसी में निवेश करने का मतलब कम समय में ज्यादा पैसे कमाना है।'' इसके फलस्वरूप नौजवानों में लालच बढ़ रहा है, खासकर भारत में जहाँ लोग कम्प्यूटर की कुछ जानकारी रखते हैं। इसका नतीजा है कि क्रिप्टो करेंसी की माँग और इससे सम्बन्धित लेन-देन में बेतहाशा बढोतरी हुई है। इस पूरी प्रक्रिया में ज्यादातर लोग कर्ज के दुश्चक्र में फँस जाएँगे। तेलंगाना के एक निजी स्कूल के अध्यापक खम्मम का आत्महत्या को मजबूर होना क्रिप्टो करेंसी के ऊँचे स्तर की जुएबाजी का एक नमूना है। इसने मुख्यधारा के मीडिया को इस पहलू पर चर्चा के लिए मजबूर कर दिया और एक राष्ट्रीय चैनल प्रतिदिन सुझाव देते हुए स्पॉटलाइट कार्यक्रम में प्रसारित कर रहा है कि क्रिप्टो करेंसी में निवेश कैसे करें।

जुएबाजी की लत के साथ अपने गहरे सम्बन्ध के चलते यह अर्थव्यवस्था के साथ-साथ लोगों के लिए भी हानिकारक है। हाल ही में भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर शक्तिकान्त दास ने कहा कि क्रिप्टो करेंसी की बेहद अस्थिर कीमतों को देखते हुए इस पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए जो इसमें निवेश करने वाले बहुसंख्यकों के जीवन को खतरे में डालती है। इसके विपरीत, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से सम्बधित स्वेदेशी जागरण मंच, जो आर्थिक मुद्दों पर अपनी राय रखता है, उसने क्रिप्टो करेंसी पर लगे प्रतिबन्ध का कड़ा विरोध किया, बल्कि उसके अनुसार सरकार को क्रिप्टो करेंसी को मान्यता देनी चाहिए क्योंकि बहुत से लोगों ने इसमें निवेश किया है। संसद के शीतकालीन सत्र में वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण द्वारा क्रिप्टो करेंसी के लिए विधेयक पेश करनेवाले बयान से सरकार की इस छद्म मुद्रा को बढ़ावा देने की मंशा जाहिर होती है। दिसम्बर 2021 में 'नेशनल काउंसिल ऑफ अप्लाइड इकोनॉमिक रिसर्च' द्वारा आयोजित सम्मेलन में अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की प्रमुख अर्थशास्त्री गीता गोपीनाथ ने कहा कि किसी भी देश के लिए क्रिप्टो करेंसी पर प्रतिबन्ध लगाना एक गम्भीर चुनौती है। इसलिए विभिन्न देशों के आपसी सहयोग से क्रिप्टो करेंसी पर एक अन्तरराष्ट्रीय नीति तैयार करना बेहद जरूरी है। यह स्पष्ट रूप से इस तथ्य को दिखाता है कि वैश्विक स्तर पर छद्म मुद्रा के तेज, त्वरित और व्यापक विस्तार के पीछे साम्राज्यवादी ताकतों का फायदा है। इसके अलावा क्रिप्टो बाजार में कदम रखने के लिए कम्प्यूटर की जानकारी होना एक जरूरी शर्त है। यही फायदा मौजूदा सरकार के 'सभी के लिए डिजिटल साक्षरता' प्राप्त करने के उत्साह के पीछे हो सकता है, जिसमें 'सभी की साक्षरता' का लक्ष्य पीछे छूट गया।

क्रिप्टो करेंसी

कानूनी रूप से स्वीकार्य (लीगल टेंडर) न होने के चलते इसका अस्तित्व सरकार या केन्द्रीय बैंकों से बिलकुल भी जुड़ा हुआ नहीं है। क्रिप्टो करेंसी डिस्ट्रीब्यूटेड लेजर टेक्नोलॉजी के एक रूप का उपयोग करती है जिसे ब्लॉक चेन-- क्रिप्टो ग्राफिक मैकेनिज्म कहा जाता है जो भुगतान के लेनदेन को मान्य बनाने के लिए एक साथ चेन वाले ब्लॉकों में जानकारी संग्रहीत करती है। चूँकि यह बहुत सारे कम्प्यूटर में बिखरी हुई होती है इसलिए सरकारी नियंत्रण के दायरे से बाहर है। इसका दोहरा उपयोग सम्भव नहीं है। इसलिए नकली नहीं बनाया जा सकता। मतलब छद्म मुद्रा के लिए छद्म मुद्रा बनाना सम्भव नहीं। वाह! दाँव खेलने के लिए ढेर सारे वैकल्पिक क्वाइन (सिक्के) जैसे लाइट क्वाइन, डौगी क्वाइन, पीर क्वाइन, एथेरियम जैसी 6000 मुद्राएँ अभी पैदा हुईं और प्रचलन में हैं। 2009 में ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर के रूप में जारी किया गया बिटक्वाइन एक अज्ञात व्यक्तिगत समूह सतोशी नाकामोतो द्वारा बनायी गयी पहली मुद्रा थी। 2008 के वैश्विक आर्थिक संकट के पैदा होने के पीछे यह तर्क खूब प्रचारित-प्रसारित किया गया कि इसकी मुख्य वजह थी मुद्रा की आपूर्ति, जिसका नियंत्रण राष्ट्रीय सरकारों के पास है। इसलिए बिटक्वाइन का एक अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा के तौर पर पैदा होना समस्या का समाधान है।

इस तरह सरकार/केन्द्रीय बैंक और रिजर्व बैंक से मुद्रा का नाता तोड़ने की प्रक्रिया शुरू हुई। अगस्त 2021 तक 1.88 करोड़ बिटक्वाइन प्रचलन में आ गयी, जिनका बाजार मूल्य 65,000 अरब रुपये है। बिटक्वाइन, जिसे वैकल्पिक वैश्विक मुद्रा के तौर पर लोकप्रिय बनाया गया है, इसे अमरीकी डॉलर के रूप में व्यक्त किया जाता है, यह एक गम्भीर अन्तर्विरोध है।

कुल 2.1 करोड़ बिटक्वाइन बनाये गये हैं, एक बार जब वे उन्हें खनन के साथ बाहर निकालते हैं, तो उनकी संख्या नहीं बढ़ायी जा सकती। हालाँकि, बहुत सारे वैकल्पिक क्वाइन्स पहले ही बना लिए गये हैं। अगस्त 2021 तक उनका कुल मूल्य 1,52,000 अरब रुपये से भी ज्यादा था। जिसमें बिटक्वाइन की हिस्सेदारी 40.5 प्रतिशत है।

क्रिप्टो करेंसी के समर्थन में दिये गये तर्क क्या संकेत देते हैं?

क्रिप्टो करेंसी एक छद्म मुद्रा है जिसे वास्तविक वैश्विक मुद्रा के तौर पर लोकप्रिय बनाया जा रहा है, जिसका उद्देश्य सरकार या केन्द्रीय बैंक के मुद्रा की आपूर्ति के एकाधिकार को तोडना है। इस प्रकार इसका उद्देश्य मुद्रा की आपूर्ति को निजी करना है। क्रिप्टो करेंसी पूरी दुनिया की पहुँच में होगी। यानी इस छद्म मुद्रा का चरित्र वैश्विक है। यह मुद्रा की आपूर्ति के निजीकरण और वैश्वीकरण को मजबूत करता है।

मुद्रा की आपूर्ति के बढ़ने से महँगाई की समस्या को बिटक्वाइन की निश्चित आपूर्ति से पूरा किया जाएगा। लेकिन हजारों दूसरे उभरते वैकल्पिक क्वाइन का क्या?

वास्तव में क्रिप्टो करेंसी से होने वाला लाभ हास्यास्पद है। कम लागत, आसान स्थानान्तरण और सरकार के दखल न होने को एक कुशलता के रूप में बताया जा रहा है। साथ ही साथ कानूनी मान्यता प्राप्त टेंडर के प्रसार के लिए एक विशाल बैंकिंग नेटवर्क की जरूरत पड़ती है, जो काफी महँगा पड़ता है लेकिन क्रिप्टो करेंसी के हस्तान्तरण के लिए ऐसा कुछ जरूरी नहीं। क्रिप्टो करेंसी की आपूर्ति बाजार की ताकत द्वारा निर्धारित है जो उनके लिए सार्थक है।

अपने आरम्भ से ही क्रिप्टो करेंसी का इतिहास करोड़ों रुपये की हैकिंग और चोरी को दर्शाता है। इसका इस्तेमाल बड़े पैमाने पर हवाला कारोबार और आपराधिक मामलों में हुआ है। हैकिंग और चोरी के चलते क्रिप्टो एक्सचेंज द्वारा अचानक दिवालियेपन की घोषणा से उन आम लोगों को नुकसान होता है जिन्होंने क्रिप्टो सम्पत्ति में निवेश कर रखा हो।

दुनिया के सबसे बड़े बिटक्वाइन एक्सचेंज एमटी गोक्स ने 2014 में चोरी के कारण 47.30 करोड़ डॉलर की कीमत के 8 लाख 50 हजार बिटक्वाइन खोये, जिसके बाद इन्होंने खुद को दिवालिया घोषित किया जिसका सबसे बड़ा नुकसान आम लोगों को हुआ। होमेरो जोश गरजा जिसने स्टार्टअप की शुरुआत की थी उसपर धोखाधड़ी करने के कारण 9.1 बिलियन डॉलर का जुर्माना लगा। इसी तरह नवम्बर 2017 में टेथर एक्सचेंज, 2018 में बिटक्वाइन गोल्ड, जून 2018 में कोरियन एक्सचेंज लाखों डॉलर की क्रिप्टो करेंसी की चोरी का शिकार हुए। छद्म मुद्रा के लिए छद्म वेबसाइट आम बात है। यह ध्यान देने वाली बात है कि इतने अधिक नुकसानदेह परिणामों के बावजूद अन्तरराष्ट्रीय संस्थाएँ और प्रभावशाली देश क्रिप्टो करेंसी पर रोक लगाने और इसके खिलाफ कारवाई से कतरा रहे हैं।

कई देशों ने क्रिप्टो करेंसी पर प्रतिबन्ध लगाया

एमटी गोक्स द्वारा अचानक दिवालिया होने की घोषणा की प्रतिक्रिया में यूनाइटेड किंगडम, अमरीका और यूरोपीय संघ ने क्रिप्टो करेंसी को नियंत्रित करने के लिए जाँच पड़ताल शुरू की है। हालाँकि इन्होंने इस पर प्रतिबन्ध लगाने का कोई फैसला नहीं लिया। इस दौरान 'जागरूकता' अभियान, मंच, एक्सचेंज, लोगों को आकर्षित करने के लिए विज्ञापन, क्रिप्टो करेंसी से सम्बन्धित नेटवर्क वैश्विक स्तर पर मजबूत हुए हैं। मार्च 2018 में क्रिप्टो करेंसी ने मरीयम वेबस्टर डिक्शनरी और उसके बाद ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में जगह बनायी। यूरोपीय संघ की संसद ने क्रिप्टो करेंसी को परिभाषित किया। इस प्रकार इन सबने इसे स्वीकार करने के लिए एक रास्ता तैयार किया।

पॉल क्रुगमैन जिन्हें 2008 में अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार मिला था, उन्होंने कहा कि क्रिप्टो करेंसी ने दुनिया भर में काले धन को सफेद करने के कारोबार (मनी लौन्डरिंग) को आगे बढ़ाया है और यह एक बुलबुला है जो खत्म नहीं होगा। जबकि अमरीका के बड़े व्यवसायी वारेन बफेट ने कहा कि क्रिप्टो करेंसी काले धन के कारोबार का सूचक है जिसका अन्त बुरा होगा। 2021 में ही सभी सरकारों ने क्रिप्टो करेंसी के नियंत्रण की जरूरत पर बात करनी शुरू की।

भारत समेत 38 देशों की सदरस्यता वाले "वित्तीय कार्रवाई कार्य बल" ने जोर देकर कहा कि हवाला कारोबार पर क्रिप्टो करेंसी के प्रभाव को देखते हुए इसे नियंत्रित किया जाना चाहिए और साथ ही जून 2020 में ट्रेवल रूल में सुधार कर इसके लेन-देन का मानकीकरण तैयार किया।

सितम्बर 2020 में यूरोपीय आयोग ने डिजिटल फाइनेंस पर अपनी रणनीति प्रकाशित की, जबकि 'अमरीकी प्रतिभूति और

विनिमय आयोग' ने इसका परीक्षण शुरू किया, वहीं यूके ने कहा कि क्रिप्टो करेंसी से सम्बन्धित सभी फर्म को 'फाइनेंसियल कंडक्ट अथॉरिटी' में पंजीकृत कराना अनिवार्य होगा।

जी-10 देशों के समूह के केन्द्रीय बैंक गवर्नरों द्वारा निर्देशित बैंकिंग देखरेख की 'बासल कमिटी' ने प्रस्तावित किया कि यदि कोई बैंक क्रिप्टो सम्पत्ति को लेता है तो उसे पहले से ही अनुमानित घाटे के बराबर रकम को अलग रखना होगा। मई 2021 में चीन ने क्रिप्टो करेंसी से सम्बन्धित सभी लेन-देन पर रोक लगा दी। दक्षिण अफ्रीका ने कई घोटालों का सामना किया जिसमें सबसे महत्त्वपूर्ण राएस कैगी और अमीर कैगी का गायब होना है जो 'अफ्रीक्रिप्ट एक्सचेंज' के संस्थापक हैं, जिनके पास अप्रैल 2021 में 3.8 अरब डॉलर के बिटक्वाइन थे। इसी तरह 'मिरर ट्रेडिंग इण्टरनेशनल' जिसके पास 17 करोड़ डॉलर थे वह अचानक खत्म हो गया। इसलिए सरकार 2022 में इसके लेन-देन को लेकर नियम कानून बना रही है। दक्षिण कोरिया ने मार्च 2021 से नये कानून बनाये जिसमें क्रिप्टो करेंसी से सम्बन्धित सभी फर्मों को 'कोरिया फाइनेंस इण्टेलिजेंस यूनिट' में पंजीकृत कर सूचना सुरक्षा प्रबन्धन प्रणाली से प्रमाणपत्र लेना होगा। अप्रैल 2021 में तुर्की गणराज्य ने क्रिप्टो करेंसी के जरिये क्रिप्टो सम्पत्ति की खरीद पर रोक लगायी। इसके उलट 2021 में अल सल्वाडोर ने बिटक्वाइन का कानूनी रूप स्वीकार किया जबकि अगस्त 2021 में क्यूबा ने इसे अपनाया।

नवम्बर 2021 में क्रिप्टो करेंसी को लेकर देशों के दृष्टिकोण की समीक्षा करने वाली कांग्रेस ने कहा 113 देशों के व्यापारिक संगठन क्रिप्टो करेंसी और क्रिप्टो सम्पत्ति को लेकर कानून बना रहे हैं जबकि 42 देशों ने क्रिप्टो करेंसी पर रोक लगायी है जिसमें पूर्ण रूप से प्रतिबन्ध लगाने वाले देश अल्जीरिया, बांग्लादेश, चीन, नेपाल, मिस्र, इराक, मोरक्को और ट्यूनीशिया हैं।

क्रिप्टो सम्पत्ति और वैधता

अमरीकी इण्टरनेशनल रिवेन्यू सर्विस ने 2014 में बिटक्वाइन को सम्पत्ति के रूप में मान्यता दी और उस पर टैक्स लगाया। कानूनी मान्यता के साथ बिटक्वाइन को आयकर रिटर्न भरने चाहिए। बिग वॉल स्ट्रीट ने 17 मार्च 2017 को घोषणा की कि वह अपने अमीर ग्राहकों को बिटक्वाइन के बदले धन उपलब्ध कराएगी। जबकि कॉर्पोरेट जगत की सबसे बड़ी कम्पनी बीएनवाई मेलोन ने 11 फरवरी 2021 से क्रिप्टो करेंसी में सेवाएँ उपलब्ध कराने की घोषणा की। अप्रैल 2020-21 से वेनमो डिजिटल वॉलेट सर्विस देने वाली कम्पनी ने अपने 6 करोड़ ग्राहको जिसमें छात्र और छोटे व्यवसायी शामिल हैं, उनको क्रिप्टो करेंसी में लेनदेन और जमा करने के लिए एक मंच तैयार किया। पीटर्सबर्ग विश्वविद्यालय के 'लेजर' पीर रिव्यू जर्नल में क्रिप्टो करेंसी से सम्बन्धित लेख प्रकाशित होंगे। यह सभी अमरीका द्वारा क्रिप्टो करेंसी को मान्यता देने के प्रमाण हैं।

अमरीकी रेड क्रॉस, यूनिसेफ और यूएन वर्ल्ड फूड प्रोग्राम ने क्रिप्टो करेंसी में दान लेने की हामी भरी ताकि क्रिप्टो करेंसी और सम्पत्ति को मजबूती से लागू किया जा सके।

भारतीय क्रिप्टो करेंसी

भारत की बहुचर्चित हस्ती अमिताभ बच्चन और उनके लड़के अभिषेक बच्चन ने 2015 में सिंगापुर की फर्म मेरिडियन टेक पीटीई से ढाई लाख डॉलर की क्रिप्टो करेंसी खरीदी जिसकी कीमत 2017 में 133 करोड़ रुपये हो गयी। इन सबने भारतीय युवा निवेशकों को क्रिप्टो करेंसी में निवेश करने को प्रोत्साहित किया और उसे लोकप्रिय बनाया ताकि मन्दी के दौर में कम समय में आसानी से धन बटोरकर विलासितापूर्ण जीवन जिया जा सके। इसी के परिणामस्वरूप 2017 में पहला भारतीय क्रिप्टो करेंसी एक्सचेंज अस्तित्व में आया, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं-- क्वाइन स्विच कूबर, क्वाइन डीसीएक्स, वजीर एक्स, जेड पे, जिसमें अमिताभ बच्चन खुद क्वाइन डीसीएक्स के ब्रांड अम्बेसडर हैं।

शुरू में इसे बढ़ावा देने वाले सोच रहे थे कि यह सिर्फ महानगरों तक सीमित रहेगा लेकिन जल्दी ही यह शहर और कस्बों में फैल गया। अभी यह लगभग 4000 शहरों तक फैला हुआ है और इसमें निवेश करने वालों की औसत उम्र 25 साल है। ब्रोकर पोर्टल , ब्रोकर जूसर की अक्टूबर 2021 की रिपोर्ट बताती है कि भारत दुनिया में क्रिप्टो मार्केट में सबसे ज्यादा लोगों द्वारा निवेश करने वाला देश (10 करोड़ निवेशक) बन गया है जबकि अमरीका 2.74 करोड़ निवेशकों के साथ दूसरे स्थान पर है।

शुरू में क्रिप्टो करेंसी को लेकर भारत की अवस्थिति दृढ नहीं थी। 2018 में भारतीय रिजर्व बैंक ने क्रिप्टो करेंसी पर प्रतिबन्ध लगाया जिसे 2020 में सुप्रीम कोर्ट ने हटा दिया। हालाँकि प्रतिबन्ध के दौरान क्रिप्टो करेंसी से सम्बन्धित गतिविधियाँ बन्द नहीं हुई। प्रतिबन्ध हटने पर इसने तेज गति हासिल जरूर की। कीमतों में बहुत उतार-चढ़ाव के बावजूद इसका फैलाव नहीं रुका। निवेशक जानते हैं 'यह एक बड़ा जुआ है' वे इस अनुमान के साथ निवेश करते हैं कि 'बुद्धिमान और समझदार को नुकसान नहीं होगा'। जल्दी से अधिक पैसा कमाना एक बड़ी कमजोरी है। यह लालच युवाओं के दिमाग पर मजबूती से असर डालता है। इसलिए लोग इस बात को सुनना ही नहीं चाहते कि क्रिप्टो करेंसी एक छद्म मुद्रा है। सबसे बड़े स्टॉक ब्रोकर जीरोधा का उपयोग

करने वाले 70 लाख लोग हैं, जबकि क्वाइन स्विच कुबर क्रिप्टो एक्सचेंज के 110 लाख। इसके अलावा, भारत से क्रिप्टो करेंसी में 3,040 अरब रुपये से ज्यादा का निवेश है।

ब्रोकर चूज दुःख जाहिर करती है कि कानूनी सुरक्षा की अनुपस्थिति के बावजूद क्रिप्टो करेंसी के उपयोगकर्ता भारत में अन्धाधुन्ध गति से बढ़ रहे हैं।

जर्मनी , अमरीका, यूके , स्वीटजरलैंड और ऑस्ट्रेलिया की शिकायत पर क्वाइन स्विच कुबेर ने 80,000 खाते, वजीर एक्स ने 14469 खाते बन्द कर दिये। हाल ही में वजीर एक्स की जाँच शुरू की गयी, क्योंकि इसने 2700 करोड़ रुपये की लेनदेन में एफईएमए (फेमा) कानून का उल्लंघन किया।

आभासी मुद्रा को समझने और उस पर प्रस्ताव रखने के लिए नवम्बर 2017 को भारत में एक उच्च स्तरीय अन्तर-मंत्रालय कमेटी का गठन किया गया। कमेटी ने 28 फरवरी 2019 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें दो बातें थीं (1) क्रिप्टो करेंसी पर प्रतिबन्ध के लिए संसद में एक कानून लाया जाये (2) आरबीआई द्वारा लागू की गयी डिजिटल करेंसी के लिए एक उच्च स्तरीय कमेटी बनायी जाये।

सुप्रीम कोर्ट के वकील और साइबर लॉ एक्सपर्ट डॉ प्रणव दुग्गल ने कहा कि क्रिप्टो करेंसी लोगों के साथ अर्थव्यवस्था के लिए भी हानिकारक है। उन्होंने कहा कि आईपीएल 2022, आईसीसी मैच, टी-ट्वण्टी वर्ल्ड कप क्रिकेट में युवाओं को आकर्षित और भ्रमित करने वाले इसके विज्ञापनों पर भी प्रतिबन्ध लगना चाहिए। यह सोचने वाली बात है कि नासकॉम ने क्रिप्टो करेंसी पर प्रतिबन्ध का विरोध किया है। इसके अलावा वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने मंशा जाहिर की कि संसद में क्रिप्टो करेंसी पर विधेयक पारित किया जाएगा, पर प्रतिबन्ध से सम्बन्धित बिल नहीं लाया जाएगा। विशेषज्ञ आकलन कर रहे हैं कि प्रस्तावित विधेयक क्रिप्टो सम्पत्तियों को निवेश के रूप में मान्यता देगा और इसलिए, उस पर पूँजीगत लाभ के रूप में टैक्स लागू करेगा।

यह सब स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि क्रिप्टो करेंसी त्वरित गति से बढ़ेगी।

क्रिप्टो करेंसी-- पर्यावरण पर प्रभाव

क्रिप्टो करेंसी के खनन और प्रूफ ऑफ वर्क से सम्बन्धित इसकी गतिविधियाँ बड़ी मात्रा में बिजली की खपत करती हैं और भारी मात्रा में कार्बन फुटप्रिंट छोड़ती हैं। इस तरह, इसकी पैदाइश महँगी और पर्यावरण के लिए हानिकारक है। इसलिए यह कहना हास्यास्पद है कि इसका निर्माण सस्ता है। अकेले 2017 में बिटक्वाइन खनन से 943 मेगावाट बिजली खर्च हुई। बिटक्वाइन, एथेरियम, लिटक्वाइन और मोनेरो की कार्य ब्लॉक श्रृंखलाओं का सबूत बनाने में जनवरी 2016 से जून 2017 के दौरान 3 से 15 मिलियन टन कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन हुआ। सितम्बर 2021 में यह अनुमान लगाया गया कि अकेले बिटक्वाइन का वार्षिक इलेक्ट्रॉनिक कचरा उत्सर्जन 30.7 मीट्रिक किलो टन और कार्बन फुटप्रिंट कचरा उत्सर्जन 95.90 मीट्रिक टन है। इसके अलावा, अकेले बिटक्वाइन का वार्षिक बिजली खर्च 201. 89 अरब किलोवाट है। इस तरह, क्रिप्टो करेंसी का प्रसार किसी दूसरे काम के लिए बिजली नहीं छोड़ेगा। इसके अलावा, यह पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन जैसे मामले के लिए बहुत ज्यादा खतरनाक है।

निगमीकरण की ओर

क्रिप्टो करेंसी जुएबाजी का दूसरा नाम है। अक्टूबर 2021 में ऑस्ट्रेलिया में एसीएक्स एक्सचेंज अचानक यह कहते हुए ढह गया कि उसने 380 करोड़ रुपये की क्रिप्टो करेंसी गवाँ दी है। इसी तरह, एक अन्य एक्सचेंज माईक्रिप्टो वॉलेट-- जिसके लेन-देन सैकड़ों-हजारों अमरीकी डॉलर के हैं, अचानक दिवालिया घोषित हो गया। दूसरी तरफ, यह भी साबित हो चुका है कि हवाला, आपराधिक और अवैध गतिविधियों के लिए क्रिप्टो करेंसी सबसे अच्छा वित्तीय साधन है। एकाधिकारी पूँजीवाद की प्रवृत्ति में साम्राज्यवादी लूट और शोषण को मजबूत करने की प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से दुनिया के अपराधीकरण को मजबूत करती है, यही आज की सच्चाई है। वे एक दूसरे को मजबूत करते हैं। वे साथ रहते हैं। लेकिन, इसके ठीक उल्टा प्रचार करते हैं कि यह सब केवल आम लोगों के फायदे के लिए है। भारतीय नौजवान जो इस विकृत दुष्चक्र में फँसे हुए हैं, हमेशा कहते हैं कि क्रिप्टो करेंसी की जुएबाजी में बुद्धिमान लोग कभी नुकसान नहीं उठाएँगे। जब क्रिप्टो एक्स्चेंज द्वारा दिवालियापन की अचानक घोषणा हो जाए तो इसमें किसी निवेशक की व्यक्तिगत बुद्धिमानी की क्या भूमिका है?

भारत में प्रभुत्वशाली ताकतों के लिए क्रिप्टो करेंसी सॉफ्टवेयर में लगे युवाओं की जमापूँजी को स्थानान्तरित करने का ताकतवर साधन है। इसलिए, यह निगमीकरण की ओर बढ़ रहा है। क्योंकि, शक्तिशाली कॉर्पोरेट ताकतों द्वारा दिये गये समर्थन से क्रिप्टो करेंसी के प्रसार का गहरा नाता है। एलन मस्क, टेस्ला इंक के सीईओ और स्पेस एक्स, ट्विटर के सीईओ, जैक डोर्सी क्रिप्टो करेंसी स्वीकार करते हैं और उनके पास इसकी भरपूर मात्रा है। गूगल की सहायक कम्पनी अल्फाबेट इंक के सीईओ सुन्दर पिचाई गर्व से कहते हैं कि उनका 11 साल का बेटा एथेरियम माइनिंग कर रहा है। इसी तरह, फेसबुक के सीईओ मार्क जुकरबर्ग, एप्पल

के सीईओ टिम कुक ने कहा कि वे बिटक्वाइन के मालिक हैं। इसके अलावा अमेजन के सीईओ और संस्थापक जेफ रे प्रेस्टन बेजोस का कहना है कि वह बिटकॉइन्स और एथेरियम के मालिक हैं। बिल गेट्स का दृढ़ मत है कि कानूनी निविदा के लिए क्रिप्टो करेंसी बेहतर है। इस तरह, सभी वैश्विक कॉर्पोरेट दिग्गज खुले तौर पर क्रिप्टो करेंसी, यानी छद्म मुद्रा को बढ़ावा देते हैं और उसका समर्थन करते हैं।

डॉगी क्वाइन का इतिहास साफ ढंग से बयान करता है कि क्रिप्टो करेंसी को भले ही बना कोई भी ले, पर उसका अस्तित्व, विकास और मूल्य शक्तिशाली कॉर्पोरेट ताकतों द्वारा निर्धारित और निर्देशित किया जाएगा। क्रिप्टो का मजाक उड़ाने के लिए 2013 में दो सॉफ्टवेयर इंजीनियर बिली मार्कर्स और जैक्सन पामर ने कुत्ते के लोगोवाले डॉगी क्वाइन बनाये, जिन्हें मीम क्वाइन कहा जाता है। यह उनके इण्टरनेट समूह में प्रचलन में है। देखते ही देखते इसकी कीमत बढ़ने लगी। डॉगी क्वाइन के सह-संस्थापक जैक्सन पामर ने यह बताते हुए कि क्रिप्टो सिक्का शोषण का साधन है और संस्थापक को अमीर बना देगा, समूह छोड़ दिया। इस बीच, एलन मस्क ने अपने ट्वीट में डॉगी क्वाइन का समर्थन किया। दिलचस्प बात यह है कि उनके हर ट्वीट से डॉगी क्वाइन के मूल्य में वृद्धि हुई। 5 मई, 2021 तक इसका बाजार पूँजीकरण 85 अरब डॉलर तक पहुँच गया और इसकी वार्षिक वृद्धि 20,000 गुना से अधिक हो गयी। मार्क क्यूबन डलास ने घोषणा की कि वह अपने लेनदेन में डॉगी क्वाइन स्वीकार करेगा। इसके परिणामस्वरूप डॉगी क्वाइन के लेन-देन में अचानक वृद्धि हुई। 9 मई, 2021 को स्पेस एक्स ने घोषणा की कि उसका पहला स्पेस मिशन डॉगी क्वाइन के जरिये ही फंड जुटाएगा। इस तरह, मजाक उड़ाने के मकसद से बनाया गया सिक्का शक्तिशाली कॉर्पोरेट ताकतों की घोषणा के चलते महत्त्वपूर्ण क्रिप्टो करेंसी में से एक बन गया।

निष्कर्ष

रुपये की आपूर्ति को सरकार से हटाकर निजी करने की प्रक्रिया में क्रिप्टो करेंसी पैदा हुई। साम्राज्यवादी शोषणकारी ताकतों के मुनाफे के साथ इसके गहरे नाते के चलते, इसका जल्दी ही वैश्वीकरण हो गया। इस तरह, क्रिप्टो करेंसी का अस्तित्व, विस्तार और विकास कॉर्पोरेट ताकतों द्वारा निर्देशित ढाँचे में होगा। यह आम लोगों को लूटने का एक मजबूत वित्तीय साधन है। साम्राज्यवादी शोषक ताकतें हमेशा शोषण के साधन खोजती हैं। इसलिए शोषणकारी व्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहिए जिससे हर तरह के शोषण के उपकरण ख़त्म हों। यह मजबूत जन आन्दोलनों के निर्माण की माँग करता है।

○

पेज 16 का शेष...

भारत सरकार ने 1963 में नागालैंड को अलग राज्य का दर्जा दिया। लेकिन इसकी सीमा से अनेकों नगा जनजातियाँ बाहर कर दी गयीं। 1964 में शिलांग समझौते के तहत भारत सरकार एनएसए के एक हिस्से को अपनी तरफ करने में सफल रही। यह हिस्सा उन स्वार्थी नौकरशाहों और व्यापारियों का प्रतिनिधित्व करता था जो नगा लोगों के अधिकारों की लड़ाई को त्याग चुके थे। ये अपने स्वार्थ के लिए भारत सरकार के अधीन होने के समझौते पर राजी हो गये थे। लेकिन एनएसए का एक धड़ा आज भी नगा लोगों की आजादी का प्रतिनिधित्व कर रहा है। इन्हीं लोगों को कुचलने के लिए भारत सरकार ने अभी तक उस क्षेत्र को अशान्त घोषित कर अफस्पा कानून लागू किया हुआ है। तात्कालिक घटना भी इसी उद्देश्य का एक हिस्सा है।

उत्तर-पूर्वी राज्य ही नहीं बल्कि कश्मीर से लेकर दान्तेवाड़ा तक भारतीय राज्यसत्ता ने अनेक दमित जनजातियों और कौमियतों के आत्मनिर्णय के अधिकारों को कुचला है। उत्तर-पूर्वी राज्य में सफल प्रयोग के बाद अफस्पा जैसे काले कानून को उन्होंने कश्मीर में भी इस्तेमाल किया। इस कानून के जरिये भारतीय राज्यसत्ता ने अपने खिलाफ उठने वाली सभी आवाजों को फौजी बूटों से कुचला है। अनेकों दावों के बाद भी भारत सरकार उनकी किसी भी समस्या को हल नहीं कर पायी है बल्कि ताकत के बल पर उनपर नियंत्रण कर रही है। एक तरफ हम ब्रिटिश औपनिवेशीकरण को गलत मानते हैं तथा लम्बे संघर्ष और अनेकों कुर्बानियों के बाद उनसे मिली आजादी का जश्न मनाते हैं। लेकिन आज उसी काम को राष्ट्रवाद के नाम पर किया जा रहा है जो कभी अंगेज करते थे। आत्मनिर्णय के अधिकार और अन्य न्यायोचित माँगों पर विचार करने की जगह उन्हें प्रताड़ित करने से कभी इस समस्या का हल नहीं निकल सकता। ○

अगर मेरा सिद्धान्त सही साबित हो गया तो जर्मन मुझे 'जर्मन' कहेंगे, स्विस मुझे 'स्विस' कहेंगे, फ्रांसिसी मुझे एक 'महान वैज्ञानिक' कहेंगे, लेकिन अगर 'सापेक्षकता का सिद्धान्त' गलत साबित हो गया तो फ्रांसिसी मुझे 'स्विस नागरिक' कहेंगे, स्विस मुझे 'जर्मन' कहेंगे, जर्मन मुझे 'यहूदी' कहेंगे।

-- अल्बर्ट आइंस्टीन, सोरबॉन यूनिवर्सिटी में अपना शुरुआती शोधपत्र प्रस्तुत करते हुए

नागालैंड में मजदूरों का बेरहम कत्लेआम

-- मोहित पुण्डिर

लम्बे समय से उत्पीड़न का शिकार भारत के उत्तर-पूर्वी राज्य नागालैंड में एक और दिल दहला देने वाली घटना घटी है। 4 दिसम्बर 2021 की शाम 21वीं पैरा कमांडो की फौजी टुकड़ी ने काम से लौट रहे मजदूरों पर अचानक हमला कर दिया। ये मजदूर मोन जिले की थीरू घाटी में स्थित नागिनिमोरा कोयला खदान में काम करते थे। हर रोज की तरह उस दिन भी वे काम खत्म करने के बाद टैम्पो में बैठकर अपने गाँव जा रहे थे। जैसे ही उनका टैम्पो असम राइफल्स कैम्प के पास पहुँचा फौजी टुकड़ी ने बिना किसी चेतावनी के उन पर चारों तरफ से गोलियाँ चला दी। इस निर्मम हत्याकांड में 7 बेकसूर मजदूरों की मौके पर ही तड़प-तड़प कर मौत हो गयी। अनेकों मजदूर गम्भीर रूप से घायल हो गये जिनके हाथ और पैरों में गोलियाँ लगी थीं। यह भयानक मंजर देख आस-पास के गाँववाले का गुस्सा सेना पर फूट पड़ा। गुस्साए ग्रामीणों ने सेना को घेरना चाहा और दोनों में भिडन्त हो गयी। वह फौजी टुकड़ी उस दिन बेकसूर लोगों के खून की प्यासी हो चली थी। आधुनिक हथियारों से लैस सैनिकों का सामना निहत्थे लोग कैसे कर सकते थे? फौजी टुकड़ी ने स्थानीय लोगों पर भी गोलियाँ चला दी जिसमें 7 स्थानीय लोग और मारे गये। एक दिन में ही सेना द्वारा दोहरे हत्याकांड से पूरा नागालैंड दहल उठा। जैसे ही यह खबर फैली, लोग सड़कों पर उतरकर सेना के इस निर्मम दमन के विरोध में प्रदर्शन करने लगे।

इस खबर को फैलता देख सेना के बड़े अफसरों से लेकर देश के गृहमंत्री तक उस फौजी टुकड़ी के बचाव में कूद पड़े। गृहमंत्री अमित शाह ने बड़ी बेशर्मी से संसद में झूठ तक बोला कि फौजी टुकड़ी ने पहले उन्हें चेतावनी देकर रुकने को कहा था लेकिन जब वह नहीं रुके तब उन पर गोलियाँ चलायी गयीं। गृहमंत्री ने आगे कहा कि सेना को वहाँ आतंकवादियों के आने की सूचना थी और यह केवल गलत पहचान का मामला है। लेकिन जल्दी ही नागालैंड के पुलिस महानिदेशक और कमिश्नर की संयुक्त रिपोर्ट ने अमित शाह के इस झूठ पर से पर्दा उठा दिया। इस रिपोर्ट में उन्होंने इस कार्रवाई को सोची-समझी साजिश बताते हुए कहा कि फौजी टुकड़ी ने न तो मजदूरों को रुकने के लिए कहा और न ही उनकी पहचान करने की कोई कोशिश की गयी थी। बल्कि वह पहले से ही घात लगाकर उस जगह बैठे थे और जैसे ही मजदूरों से भरा टेम्पों वहाँ पहुँचा तो उनपर गोलियाँ बरसा दी गयी थी। आगे उन्होंने बताया कि अगर सेना को आतंकवादियों के वहाँ होने की सूचना थी तो उन्होंने स्थानीय पुलिस को अपने साथ क्यों नहीं लिया? इस रिपोर्ट में यह भी बताया गया कि मजदूरों को मारने के बाद वह उन्हें दूसरी जीप में डाल रहे थे। इसकी पूरी सम्भावना है कि उन्हें मारकर किसी दूसरी जगह ले जाया जा रहा था जिससे उन्हें आतंकवादी घोषित कर मुठभेड़ में मरा हुआ बता दिया जाता। लेकिन ग्रामीणों के वहाँ समय पर पहुँचने और विरोध करने के कारण वह इस काम में नाकाम रहे। इस घटना में घायल मजदूरों ने भी यही बात बतायी कि बिना किसी चेतावनी के उन पर सीधा हमला किया गया था। इतने तथ्य सामने आने के बाद भी उन बेकसूर मजदूरों को इन्साफ दिलाने की जगह केन्द्रीय सरकार मामले को दबाने की कोशिश कर रही है। सत्ता में आने के बाद से ही मोदी सरकार नागालैंड की समस्या का समाधान करने का दावा कर रही है। लेकिन इस घटना ने एक बार फिर सरकार के सभी दावों की पोल खोल दी है।

बेकसूर लोगों पर सेना के दमन की यह कोई पहली घटना नहीं है। लम्बे समय से वहाँ के लोग भारतीय सेना के दमन का शिकार हैं। सरकार ने इस क्षेत्र को अशान्त घोषित कर 'अफस्पा' कानून लागू किया हुआ है। यह कानून पूरे इलाके में सेना का दबदबा कायम करता है। इस कानून के तहत सेना को घर की तलाशी लेने और किसी व्यक्ति को मारने तक का अधिकार मिला हुआ है। सरकार इस कानून के जरिये शान्ति कायम करने का दावा करती है। हालाँकि तथ्य सरकार के दावों से मेल नहीं खाते। सरकार का कहना है कि कुछ चरमपंथी नेता नागालैंड को आतंकवाद का गढ़ बनाये हुए हैं। लेकिन यह नेता क्यों और किसलिए लड़ रहें है? तात्कालिक घटनाओं को सही परिपेक्ष्य में समझने के लिए हमें नागालैंड और नगा लोगों के इतिहास को समझना होगा।

दरअसल नगा अनेकों जनजातियों और जातियों का समूह है जो असम, मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश समेत म्यांमार (बर्मा) के सीमावर्ती क्षेत्र में रहती हैं। यह सभी जनजातियाँ इतिहास में लम्बे समय तक एक दूसरे से कटी रही जिस कारण इनकी बोली और संस्कृति भी अलग-अलग है। साथ ही भारत के अन्य हिस्सों से भी इनका सम्पर्क बेहद कम रहा है। इन सभी जनजातियों के बीच सम्पर्क अंग्रेजों के भारत आने के बाद बढ़ा। आंग्ल-बर्मा युद्ध के बाद से ही अंग्रेजों ने ब्रहमपुत्र घाटी के दक्षिण में स्थित नगा पहाड़ियों पर कब्जा जमाने के लिए वहाँ स्थित जनजातियों का दमन करना शुरू कर दिया था। इस दमन का मुकाबला सभी जनजातियों ने मिलकर किया और अंग्रेजों को नाकों चने चबवा दिये। ब्रिटिश औपनिवेशिकरण के खिलाफ चले लम्बे संघर्ष की प्रक्रिया में इन सभी जनजातियों में राष्ट्रवाद की भावना उत्पन्न हुई। हालाँकि शेष भारत में चल रहे आजादी के आन्दोलन से इनका कोई सम्बन्ध नहीं था। यह अपनी लड़ाई खुद मिलकर लड़ रहे थे। 1918 में 'नगा क्लब' नामक पहला नगा राष्ट्रवादी संगठन बना। यह क्लब नगा लोगों के अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए बनाया गया था। 1929 में इस क्लब ने 'साइमन कमीशन' के समक्ष भारत से अलग रहकर आत्मनिर्णय के अधिकार की माँग रखी थी। इनका मनना था कि भारत और उनके बीच किसी भी तरह का इतिहास में कोई रिश्ता नहीं रहा है इसलिए उन्हें अपना अलग राष्ट्र बनाने का अधिकार मिलना चाहिए। नगा क्लब के लोगों ने अपना अलग देश बनाने का फैसला लिया और 1946 में 'नगा नेशनल काउंसिल'(एनएनसी) की स्थापना की। इस काउंसिल ने 14 अगस्त 1947 में ही नागालैंड को एक स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया था। लेकिन भारत के आजाद होने के बाद जवाहरलाल नेहरु ने इनके अलग रहने के अधिकार को नकार दिया। जिस कारण नगा लोगों और नेहरु के बीच विवाद पैदा हुआ। 1951 में एनएनसी ने नगा लोगों के बीच जनमत कराया जिसमें 99 प्रतिशत लोगों ने अलग राष्ट्र की माँग पर वोट दिया। इस जनमत को भी नकारते हुए भारतीय राज्यसत्ता उन्हें जबरदस्ती अपने अधीन करने का प्रयास कर रही थी। जब नगा लोगों को यह विश्वास हो गया कि नेहरु उनके आत्मनिर्णय के अधिकार को कुचल रहे हैं तो उन्होंने 1956 में नागालैंड की फेडरल सरकार की घोषणा की। इस घोषणा से बौखलाए नेहरु ने 1958 में 'आर्म्ड फोर्सेस, स्पेशल पॉवर' यानी अफस्पा कानून को नागालैंड में लागू कर दिया। इस कानून की शुरुआत अंग्रेजों ने 1942 में 'अंग्रेजों भारत छोड़ों' आन्दोलन को कुचलने के लिए भारतीयों पर की थी। आजाद भारत में सबसे पहले इस कानून का प्रयोग अपने आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए लड़ने वाले नगा लोगों पर किया गया। यह कानून सशस्त्र सुरक्षा एजेंसियों को असीमित शक्ति प्रदान करता है। इस कानून की धारा 3 के अन्तर्गत केन्द्र सरकार किसी भी राज्य को अशान्त क्षेत्र घोषित कर वहाँ यह काला कानून लागू कर सकती है। 1958 में इस कानून के पारित होते ही मिजोरम और नागालैंड में दहशत फैलाने के लिए हेलीकॉप्टर से विद्रोहियों पर गोलियाँ चलवायी गयीं जिसमें कितने ही बेकसूर लोग मार दिये गये थे। नेहरु को विश्वास था कि वह उनके आन्दोलन को कुचल देंगे लेकिन यह अभी तक मुमकिन न हो सका। अफस्पा कानून के जरिये नगा लोगों की जिन्दगी फौजी बूटों के हवाले कर दी गयी थी। इस कानून के जरिये निर्दोष नगा लोगों पर जुर्म की कहानी अनन्त है। 'गैर कानूनी हत्या पीड़ित परिवार संघ, मणिपुर' उन लोगों का संघ है जिनके परिवार वालों को सेना ने फर्जी मुठभेड़ों में मार दिया है। इन्होंने पूरे तथ्यों के साथ सुप्रीम कोर्ट में यह दावा किया कि अकेले मणिपुर में ही सशस्त्र सुरक्षा एजेंसियों द्वारा 1979 से लेकर 2012 तक फर्जी मुठभेड़ों में लगभग 1528 निर्दोष लोग मार दिये गये हैं। सुप्रीम कोर्ट पर जब दबाव बना तो उसने इसकी जाँच करने के लिए जस्टिस सन्तोष हेगड़े की अध्यक्षता में एक कमिटी गठित की। इस कमिटी की रिपोर्ट चौकाने वाली थी। इस आयोग ने छह मुठभेड़ों को लेकर अपनी विस्तृत रिपोर्ट दी। इन रिपोर्टों के अनुसार सेना ने जिन्हें आतंकी बताकर मुठभेड़ में मारा, उनमें से किसी का कोई आपराधिक रिकॉर्ड नहीं था, वे सब सामान्य नागरिक थे। सेना के पास ऐसा कोई तथ्य मौजूद नहीं था जिससे वे आतंकवादी साबित हो सकें। सेना द्वारा इन फर्जी मुठभेड़ों में मारे जाने वालों में 12 साल का आजाद खान भी शामिल है जिसे उसके घर से अचानक उठा लिया गया था। सेना ने पहले उसे अपने बूटों से बुरी तरह जख्मी किया और बाद में तड़पा-तड़पा कर उसे मार दिया था। नगा लोगों ने अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों के बावजूद संघर्ष का रास्ता नहीं छोड़ा। भारतीय सेना द्वारा उत्पीड़न का उन्होंने डटकर विरोध किया।

2012 में सेना ने एक महिला का उसके घर वालों के सामने बलात्कार किया और बाद में उसके सर पर गोली मार दी थी। इस घटना के बाद हर तरफ भारतीय सेना और अफस्पा का विरोध होने लगा था। महिलाओं ने नग्न होकर सेना के दफ्तर के सामने प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन में उन्होंने एक बैनर पर लिखा था 'भारतीय सेना हमारा बलात्कार करो'। अफस्पा कानून को खत्म करने की माँग को लेकर इरोम शर्मिला ने 16 साल तक भूख हड़ताल की लेकिन भारत सरकार का उत्तर-पूर्वी राज्यों को लेकर रवैया नहीं बदला। यह काला कानून आज भी वहाँ के लोगों के लिए हत्या का सबब बना हुआ है।

शेष पेज 14 पर...

स्मार्ट फोन : पूँजीवादी लूट का औजार

-- डॉ. बलजिन्दर

बोलचाल की आम भाषा में श्रम करने का अर्थ शारीरिक परिश्रम करने वाले काम से लिया जाता है। आम जनता श्रम के अन्य रूपों पर बहुत कम ध्यान देती है। लूट का अर्थ है-- श्रमिकों से अधिक काम लेना और कम भुगतान करना तथा इस प्रकार लूट का अर्थ अपना मुनाफा कमाने से लिया जाता है। ऐसी परिस्थितियों में हमें लूटने वाले और लुटे जाने वाले के रूप में दो सिरे आमने-सामने खड़े नजर आते हैं। लेकिन पूँजीवादी लूट का ढाँचा इतना जटिल और विशाल है कि हम अक्सर इसके विरोधी ध्रुवों को नहीं देख पाते। ऐसी अदृश्य घटना की पड़ताल करने का हमारा यह एक प्रयास है।

स्मार्टफोन या पॉलीमीडिया?

आज के इण्टरनेट और मोबाइल फोन की दुनिया में स्मार्टफोन एक आम प्रचलित नाम है। फोन तो ठीक है, लेकिन यह स्मार्टफोन क्या बला है? स्मार्ट का अर्थ उस फोन से है जिससे हम आम फोन की बातचीत करने के अलावा कई अन्य प्रकार के कार्य भी निपटा सकते हैं। मसलन, इण्टरनेट पर सर्फिंग, कम्प्यूटर जैसी मेमोरी क्षमता वाला, कैमरे की तरह तस्वीरें लेने वाला, तेज और स्पष्ट छवियाँ दिखाने वाली उच्च गुणवत्ता वाली डिस्प्ले टच स्क्रीन से लैस, और विभिन्न अनुप्रयोगों, संगीत, पढ़ाई-लिखाई, वीडियो, समाचार पत्र, बैंकिंग प्रणाली, गेमिंग, शब्दकोश, दुनिया की विभिन्न भाषाओं को सीखने में मदद करने वाला, ऐसे ही कई और उपकरणों से लैस किया जा सकता हो, जिनका उपयोग कम्प्यूटर पर सभी सम्भावित कार्यों को आसानी से करने के लिए किया जा सकता हो।

तकनीक के विकास और विश्व व्यापार में बढ़ती प्रतिस्पर्धा के परिणामस्वरूप स्मार्टफोन आज दुनिया की बड़ी आबादी तक पहुँच गया है और कोविड महामारी के दौर में ऑनलाइन कक्षाओं के रुझान ने तकरीबन हर मध्यमवर्गीय घर में ऐसे फोन को उपलब्ध करवाया है। यहाँ इस बात पर भी गौर करना जरूरी है कि ऑनलाइन कक्षाओं ने भी वेब सर्विसेज, वेब मीटिंग, जूम मीटिंग आदि के उपयोग को बहुत प्रोत्साहित किया है, यानी जहाँ पहले इसका उपयोग कॉर्पोरेट संस्थाएँ भी कभी-कभार ही करती थीं, अब मध्यमवर्गीय घर में इसका चलन आम है। सोशल मीडिया के उपयोग ने भी, जिनमें ट्विटर, फेसबुक और व्हाट्सएप प्रमुख हैं, इस फोन की संख्या में बढ़ोतरी की है। यहाँ हम स्मार्टफोन की गुणवत्ता और उसके विभिन्न फीचर्स के बारे में बात नहीं करने जा रहे हैं। हम इनसे जुड़ी पूँजीवादी व्यवस्था की लूट को उजागर करने का प्रयास कर रहे हैं।

तुर्की के अंकारा में स्थित हैसेटैपे विश्वविद्यालय में मई 2015 से फरवरी 2016 तक किये गये एक अध्ययन में स्मार्टफोन के रोजाना उपयोग को आज के पूँजीवादी युग के सन्दर्भ में जिंसीकरण और लूट के सन्दर्भ में देखा गया है।

हम पूँजीवादी लूट के सिद्धान्त की तीन सन्दर्भों में छानबीन करते है-- सोशल मीडिया, फुरसत (लीजर) और लूट। मास मीडिया का मुख्य उत्पाद इसके दर्शक होते हैं, जो कि इसका ठोस रूप हैं, यहाँ समझने वाली एक बात यह है कि फोन बनाने वाली कम्पनी ने अपने उत्पाद यानी फोन बेचकर पैसा कमा लिया, मतलब एक किस्म की लूट को अंजाम दिया है, लेकिन यह समझना भी जरूरी है कि लूट कहाँ और कैसे की जाती है। जाहिरा तौर पर मास मीडिया-- समाचार, गीत-संगीत, टीवी, आदि श्रोताओं के लिए मुफ्त में दरयाफ्त किया गया लगता है, लेकिन यह सब मीडिया फ्री-फंड में उपलब्ध नहीं है, बल्कि हमें इसकी कीमत चुकानी पड़ती है-- विज्ञापन के जरिये। इस विज्ञापन के धन्धे को तो हर दर्शक सहज ही पहचान लेता है, लेकिन स्वाभाविक लगने वाले हर विज्ञापन में लूट दिखायी नहीं देती, बल्कि यह हमारे रोजमर्रा के जीवन की हड्डी बन चुकी होती है।

संचार व्यवस्था की राजनीतिक अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले कनाडा के डालस वॉकर समाईथ का कहना था कि पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली समाज की रगों में जितनी ज्यादा समाती जाती है, उतना ही यह मनुष्य के फुरसत (लीजर) के समय को काम के समय में तबदील करती जाती है। पूँजीवादी व्यवस्था, मुट्ठी भर लोगों को छोड़कर, आम आदमी को कहती है कि अपना जीवन बसर करने के लिए काम करो। इस खाली समय में मजदूर अपनी श्रम शक्ति का पुनरुत्पादन करता है, इस दौरान वह अपनी अन्य जरूरतों को पूरा करता है और साथ ही वह अन्य जिम्मेदारियों को भी निभाता है। इस प्रकार यह खाली समय भी विभिन्न रूपों में श्रम का ही एक रूप बना रहता है। इस तरह टीवी के सामने बैठकर आराम करते हुए भी लोग पूँजीवादी चक्की की लूट से मुक्त नहीं रह पाते।

वर्तमान पूँजीवादी संरचना क्या है?

उत्पादन की पिछली सारी आर्थिक संरचनाओं से अधिक पूँजीवादी संरचना की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस संरचना के भीतर श्रम शक्ति के पुनरुत्पादन की प्रक्रिया जिंसों के उपभोग से बहुत निकटता से जुड़ी हुई है। इस ढाँचे में विचरने वालों के लिए यह जरूरी है कि वे बाजार से सामान खरीदकर अपनी व्यक्तिगत जरूरतों को पूरा करें, न कि अपनी व्यक्तिगत जरूरतों को उन उत्पादों से पूरा करें जो उन्होंने खुद पैदा किये हैं। पूरी प्रक्रिया को फ्रांसीसी दार्शनिक मिशेल डी सरतूय ने खूबसूरत अन्दाज में पेश किया है--

"उपभोग बड़ी टेढ़ी खीर है, बिखरा हुआ रहता है, लेकिन यह चुपचाप और अदृश्य रूप से हर जगह पाया जाता है, क्योंकि यह खुद को अपने उत्पादों द्वारा उपभोग किये जाने के रूप में जाहिर नहीं करता, बल्कि, प्रमुख आर्थिक सरंचना द्वारा थोपी गयी वस्तुओं के उपभोग किये जाने के तौर-तरीके में उजागर करता है।"

आज के युग में उपभोक्ता वस्तुएँ क्या हैं, क्या वे खुद उपभोक्ता द्वारा उत्पादित की जाती हैं या फिर ये उन उपभोक्ताओं पर थोपी गयी हैं? महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह एक ऐसी घटना है जो हमारे उपयोग करने के तरीके से ही सामने आती है कि वस्तुओं का उपभोग करते हुए उपभोक्ता उनमें से केवल कुछ का ही उत्पादन कर रहा होता है, लेकिन अपनी उत्पादित वस्तुओं समेत सभी वस्तुओं को वह बाजार से खरीदता है।

कस्टमाईजेशन बनाम डिजिटल श्रम

कस्टमाईजेशन एक ऐसा तरीका है जिसके माध्यम से मास मीडिया लूट से बाहर रह गये व्यक्तियों को अपने में समाहित करता है। कस्टमाईजेशन के तहत उपयोगकर्ता की जरूरतों, रुचियों और प्रवृत्तियों आदि के अनुरूप प्रोग्राम और सामग्री तैयार करके परोसी जाती है। यह व्यक्तिगत तो होती ही है, सर्वव्यापी भी होती है। वैयक्तिकरण की इस परिघटना के माध्यम से किये जाने वाले ऐसे श्रम को डिजिटल श्रम कहा जाता है। हाल के दिनों में डिजिटल श्रम सर्वव्यापी हो गया है। इस श्रम को ही फ्री श्रम के रूप में देखा जाता है। हालाँकि डिजिटल श्रम केवल सोशल मीडिया या वेब यूजर्स तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि उन सभी को अपने में समाहित कर लेता है-- जैसे डिजिटल श्रम ऐसा श्रम है, जिसमें हर तरह का पेड (भुगतान किया हुआ) और अनपेड (भुगतान न किया हुआ) श्रम शामिल है, जिसके आधार पर डिजिटल तकनीक, सामग्री और डेटा का निर्माण किया जाता है और बाजार में जिंस के रूप में बेचा जाता है। पैदावार और खपत के ऐसे संयोजन को *डू इट योरसेल्फ* संस्कृति, यानी अपने हाथों अपना काम सँवारना कहा जाता है। ऐसी संस्कृति में मुख्य श्रमिक गैर-पेशेवर आम यूजर्स ही होते हैं, जो अपने काम के घण्टों में भी और अपने आराम के समय भी उत्पादन में व्यस्त रहते हैं और यह पूरे समाज को अपने घेरे में ले लेता है। यही कारण है कि आज पूरा समाज ही एक कारखाना बन चुका है। ऐसे उपभोक्ताओं को सम्बोधित करने के लिए एक उपनाम प्रोज्यूमर्स का इस्तेमाल किया जाता है, जिसका अर्थ है कि प्रोडक्शन (उत्पादन) और कंजम्पशन (खपत) साथ-साथ चलते हैं।

फोन यूजर्स क्या बनाते हैं?

ऐसे प्रोज्यूमर्स स्मार्टफोन का उपयोग करने और अपना डेटा साझा करने में बहुत सक्रिय भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के लिए, फेसबुक की आमदनी का मुख्य स्रोत इस प्लेटफॉर्म के यूजर्स द्वारा साझा की गयी मोटी जानकारी, जिसमें उनके लाइक्स (अपनी पसन्द का इजहार करना) और अपनी मित्र-मण्डली का विवरण शामिल होते हैं, उनके द्वारा वेबसाइटों की छानी गयी खाक, उनके द्वारा देखी गयी वस्तुओं की सूची, खरीदी गयी वस्तुएँ, और यह विवरण भी शामिल होता है कि वे इन कामों में कितने समय मशरूफ रहते हैं। इसके साथ-साथ सूचना का उत्पादन भी हो रहा होता है और जब इस तरह की सम्भावित घटना एक सामाजिक गतिविधि बन जाती है, तो उत्पादन सम्बन्धों की लूट और भी अधिक अदृश्य हो जाती है, क्योंकि ये उत्पाद स्पष्ट रूप से भौतिक रूप में मौजूद नहीं होते। तो यह घटना स्वाभाविक ही लगने लगती है। इनमें से अधिकांश वस्तुएँ बिखरी हुई होती हैं और अल्पकालिक होती हैं, न कि स्थायी। इन सभी गुणों के कारण, ये उत्पाद अदृश्य हैं, लेकिन वे एक जिंस के रूप में कभी भी गायब नहीं होतीं। इस प्रकार, प्रोजम्पशन (प्रोडक्शन और कंजम्पशन, यानी उत्पादन करना और खपत करना) उत्पादन के इन सम्बन्धों को बरकरार रखने और उपयोग करने के साधन के रूप में सामने आता है। यह हर घड़ी, हर दिन नया उत्पादन करता रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यह फोन यूजर्स के श्रम की लूट है जिसका भुगतान नहीं किया गया होता है और बदले में उनके डेटा का जिंसीकरण भी हो रहा होता है।

स्मार्टफोन द्वारा रोजमर्रा के जीवन में लाये गये बदलाव

स्मार्टफोन का इस्तेमाल करने वालों की दुनिया आमतौर पर सुबह उठते ही शुरू हो जाती है। जब वे अपने फोन अलार्म को बन्द करने के लिए उठते हैं, तो सबसे पहले वे सोशल साइट्स पर जाते हैं। उसके बाद फिर सारा दिन, स्कूल क्या, घर क्या, ऑफिस क्या, गली-मोहल्ला, बस-ट्राम, मेट्रो-ट्रेन, यहाँ तक कि शौचालय में भी, यानी हर जगह स्मार्टफोन उनका एक अभिन्न अंग बना रहता है। उपरोक्त अध्ययन में शामिल फार्मा कम्पनी में काम करने वाले 35 वर्षीय सोनर ने कहा, "मुझे अपनी सीट छोड़े बिना सभी प्रकार के बिलों का भुगतान करने की सुविधा प्राप्त है। ऐसा बैंकिंग एप्प की बदौलत है। इसने मेरे जीवन को आसान

बना दिया है।" उसने आगे कहा कि, "हम अब और अधिक सामाजिक हो गये हैं, हम अधिक आदान-प्रदान करते हैं। किसी ने अपना नाश्ता साझा किया है, तो किसी ने आज टर्किश आमलेट के बारे में पोस्ट किया है।"

इसी तरह एक 27 वर्षीय अंग्रेजी शिक्षिका शीयडा का कहना है कि, "मैं सुबह उठते ही अपना मेल चेक करती हूँ, शायद कोई जॉब ऑफर ही आया पड़ा हो। इसके बाद मैं ट्विटर पर और बाद में फेसबुक पर क्लिक करती हूँ। भले ही मैं कुछ न कर रही होऊँ, फिर भी मैं फेसबुक और ट्विटर तो देख ही लेती हूँ।"

तीस वर्षीय सरकारी कर्मचारी बानू का कहना है कि, "मैंने कभी अपने डेस्कटॉप कम्प्यूटर का इस्तेमाल ही नहीं किया। वह अपनी जगह पर पड़ा है। स्मार्टफोन इस्तेमाल करना मुझे ज्यादा आसान लगता है। मैं इसे जहाँ चाहूँ ले जा सकती हूँ। यहाँ तक कि बाथरूम, टॉयलेट, आदि तक भी। अब टॉयलेट में बैठकर पढ़ने के लिए अखबार ले जाने की जरूरत ही नहीं पड़ती।"

इन सभी उदाहरणों से पता चलता है कि स्मार्टफोन यूजर्स जब कुछ नहीं भी कर रहे होते, तब भी सोशल मीडिया पर मौजूद होते हैं। इसके साथ ही वे अपने रोजमर्रा के काम, मसलन बिलों का भुगतान करने, अपने दोस्तों की खोज-खबर लेने, और अपने मोबाइल पर पत्रिकाओं के पन्ने पलटने का काम भी कर रहे होते हैं। उनके बारे में उनकी सकारात्मक या नकारात्मक टिप्पणियाँ उनके द्वारा किये गये उपयोग पर निर्भर करती हैं। इस तरह के उपयोग ने काम और अवकाश के बीच, और पेड और अनपेड के बीच की खाई को पाट दिया है। इन सभी सीमाओं को तोड़ने का ही परिणाम प्रोज्यूमिंग है। जैसे-जैसे यह सब सामान्य काम चलता रहता है, यूजर्स की सारी व्यक्तिगत जानकारी एक जिंस में तबदील कर दी जाती है और उसका बँटवारा कर लिया जाता है।

जिंस की क्लासिक परिभाषा

जिंस के बारे में बात करते हुए, मार्क्स ने कहा था कि, "सबसे पहले, जिंस एक बाहरी उत्पाद है, एक ऐसा उत्पाद जो अपनी विशेषताओं के माध्यम से मनुष्य की सभी जरूरतों की तस्सली करवाता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आवश्यकता की प्रकृति क्या है या यह कहाँ से आती है। उदाहरण के लिए, चाहे वह पेट से उठी भूख है या फिर मन से उठी कोई उमंग।" जब इन प्रयोगों को विनिमय मूल्य के रूप में देखा जाता है, तो अर्थशास्त्र की भाषा में यह प्रत्येक वस्तु के उपयोग मूल्य (यूज वैल्यू) के रूप में हमारे सामने आता है। यह अलग बात है कि हमें अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में इसका इल्म होता है या नहीं। इसमें कोई दो राय नहीं है कि लोग स्मार्टफोन का इस्तेमाल किसी विशिष्ट उपयोग (मूल्य) के लिए करते हैं, लेकिन उनके यूजर्स डेटा का जिंसीकरण करना, आमतौर पर उत्पादन की पूँजीवादी संरचना के मौजूदा कामकाज से जुड़ा होता है।

स्मार्टफोन, एक मुक्ति उपकरण के रूप में

स्मार्टफोन की महत्ता की बात चल रही है, तो विज्ञान के तमाम आविष्कारों और छलांगों की तरह स्मार्टफोन को भी मुक्ति मशीन के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है। जून 2013 में तुर्की में और 2018 में हाँगकांग में हुए विरोध प्रदर्शनों में इसके इस्तेमाल के उदाहरण हमारे सामने हैं। आज के किसान आन्दोलन के दौरान भी, तत्काल सन्देश पहुँचाने और तथ्यात्मक जानकारी देने के लिए इनके इस्तेमाल के उदाहरण हमारे सामने हैं। ऐसे उदाहरणों से पता चलता है कि प्रत्येक यूजर्स के लिए इसके मायने अलग-अलग होते हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि इसकी राजनीतिक अर्थव्यवस्था के मुताबिक परिभाषा अब मान्य नहीं है। वह उतनी ही यथोचित और उचित है।

लूट के उपकरण के रूप में स्मार्टफोन

विभिन्न प्रकार के गैजेट्स से लैस स्मार्टफोन और स्मार्टफोन के माध्यम से प्राप्त विभिन्न प्रकार के एप्स की उपलब्धता पूँजी का संचय (कैपिटल एक्यूमुलेशन) करती है।

इसमें डिजिटल लेबर (श्रम) की लूट का एक हिस्सा इस रूप में मौजूद रहता है--

1. यूजर्स के लिए व्यापारिक सोशल प्लेटफॉर्म का इस्तेमाल करना लाजमी है।

2. इन प्लेटफॉर्मों पर की गयी गतिविधियों से होने वाले मुनाफे और उससे उत्पन्न डेटा का स्वामित्व सोशल मीडिया कम्पनियों के पास है, न कि यूजर्स के पास। यानी पैदा की गयी वस्तु और मुनाफे के स्वामित्व से अलगहदगी।

3. और यूजर्स इन तरकीबों के जरिये अपनी व्यक्तिगत जानकारी सोशल मीडिया कम्पनियों के हवाले कर देता है, जिसका अर्थ है पैदा की गयी उपज को कम्पनियों द्वारा हड़प लिया जाता है।

इस तरह, यूजर्स अपने-अपने घर बैठे स्मार्टफोन के साथ 'कुछ भी न करते हुए' भी पूँजी के संचय में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे होते हैं। पूँजी द्वारा लूटे जाने के लिए उनकी ये बेकार की गतिविधियाँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि कुछ लोग यह प्रचार करते हैं कि मार्क्स की और मार्क्सवाद की अब कोई प्रासंगिकता नहीं रह गयी है, क्योंकि अब क्लासिक रूप वाले कारखानों में क्लासिक मजदूर वर्ग नहीं रहा। अब हर कोई सोशल मीडिया पर अपनी बात रखने के लिए स्वतंत्र है। लेकिन यह परिघटना मार्क्सवाद के बुनियादी सिद्धान्तों का निषेध नहीं करती, बल्कि यह दर्शाती है कि पूँजीवादी लूट का दायरा अब इतना विशाल, व्यापक और सूक्ष्म तौर पर घर कर चुका है कि अब इस पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता हमारे कन्धों पर आन पड़ी है।

व्यंग्य

चरणों में कैसे आ गये?

-- विष्णु नागर

आप तो जी, 'मास्टरस्ट्रोक पर मास्टरस्ट्रोक' मार रहे थे न, फिर अचानक क्या हुआ गुरूपर्व के दिन सुबह-सुबह आपने तो तीनों काले कृषि कानून वापस लेने की घोषणा कर दी! अकड़े हुए थे तो ऐसे कि जैसे कभी झुकेंगे नहीं, झुकना जानते ही नहीं। शहीदाना मुद्रा ऐसी थी कि सर कटा सकते हैं लेकिन सर झुका सकते नहीं। और झुके तो फिर ऐसे झुके कि सीधे साष्टांग दंडवत करने पर आ गये। बीच की सारी स्टेज एकदम गायब! एकदम सरदार पटेल से माफीवीर बन गये। मान गये जी, आप महान स्ट्रेटेजिस्ट हो। वाह-वाह! बलि-बलि जाऊँ आप पर! विश्व इतिहास में ऐसे रणनीतिकार हुए ही कितने हैं! एक वे चाणक्य थे, एक आप हैं। और चाणक्य भी क्या थे, जी। बस आप हैं और आप ही आप रहेंगे। आज सारी दुनिया मोदी की ओर देख रही है। ये तो चाणक्य का भी गुरू है। बिलकुल गुरूघण्टाल है।

ये किसान कल तक तो खालिस्तानी हुआ करते थे, न महाशय? आतंकवादी थे न ये? चीन और पाकिस्तान के हाथों में खेल रहे थे न ये! टुकड़े-टुकड़े गैंग इनके पीछे था न! फिर परम राष्ट्रवादी जी, आप इनके सामने झुक कैसे गये? झुक गये 'आतंकवादियों-देशद्रोहियों' के आगे? ये किसान तो नहीं थे न! ये तो आढ़तिये थे न! ये तो मुट्ठी भर थे न, फिर भी झुक गये इनके आगे? जिनका दिल्ली आने का रास्ता रोकने के लिए आपने सड़कें खुदवाई थीं, बैरिकेडिंग करवाई थी। ठंड में पानी की बौछारों से जिनका 'स्वागत' करवाया था। जिन पर डंडे चलवाए थे। जिनका सिर फोड़ने का संकल्प था। जिन्हें रोकने के लिए सड़क पर बड़ी-बड़ी कीलें ठुकवाई थीं। तारों का जाल बिछवाया था। जिनसे बात न करने की कसम खाई और खिलवाई थी आपने। उनके आगे ही सिर नवा दिया? अरे जब आपको अपनी नेकनीयती पर इतना भरोसा था, ये कानून जब देश के हित में है, अपने किसान हितैषी होने पर आपको पूरा विश्वास था तो पीछे क्यों हटे? और हटना था तो किसानों के धरने के दस, पन्द्रह दिन बाद, एक महीने बाद हटते तो फायदा भी होता। चुनाव के समय अक्ल आयी तो क्या अक्ल आयी? एक साल बाद आयी तो क्या आयी? आप तो बड़े भारी रणनीतिकार माने जाते हो, यही थी आपकी रणनीति? अब तो भैया आप कुएँ में गिरो या खाई में, बात एक है। गिरना आपको है। च्वाइस इनके बीच ही है। आपने अपने पर हँसने, खिल्ली उड़वाने का एक और मौका दे दिया है, इसके लिए देश की 130 करोड़ जनता का धन्यवाद, आभार।

अरे मास्टरस्ट्रोकी जी, ये फैसला लेने से पहले उन बेचारे गोदी चौनलों के एंकरों के बारे में सोचा होता, जो थूके हुए को अब चाट भी नहीं पा रहे और ये भी नहीं कह पा रहे कि हमने नहीं थूका था। पीछे हटने से पहले अपने लाखों भक्तों के बारे में भी सोचा होता, जो बेचारे सारी शर्म को ताक पर रखकर, कष्ट भोग कर भी पेट्रोल-डीजल के महँगे होने का जी जान से समर्थन कर रहे थे। कुछ नहीं तो बेचारे उन मालवीय जी के बारे में सोचा होता, जो झूठ के पिटारे में रोज कुछ नया माल लाते और बेचते हैं। अब बेचारे ये सब जाएँगे कहाँ? करेंगे, वही जो कर रहे थे मगर आपने इनका मॉरल डाउन कर दिया है। अब रोते-रोते, खाँसते-खँखारते, लजाते-शरमाते समर्थन कर रहे हैं। फिर पीछे हटोगे, तो फिर समर्थन करेंगे। फँस गये बेचारे गरीब मास्टरस्ट्रोकी जी के चक्कर में। अभी तो और भुगतोगे अर्णबों।

अब ऐसा है मोदी जी पीछे हटे हो तो अब हटते ही चले जाओ। इसी में भला है आपका। यही अब आपका मास्टर स्ट्रोक हो सकता है। जैसे क्रिकेट के खिलाड़ी समझ जाते हैं कि अब धीरे-धीरे हटकर पूरी तरह हटने का समय आ चुका है, उसी तरह हटते जाओ। हटते-हटते इतना हट जाओ कि सीन से गायब हो जाओ। 2024 मैं नहीं लड़ूँगा, यह घोषणा कर दो। फिर मजे से रामदेव के प्रोडक्ट्स का विज्ञापन करो। योगाश्रम खोल लो। टीवी पर पाककला का कार्यक्रम करो। खिचड़ी-फाफड़ा बनाने की विधि सिखाओ। इसे खाने के फायदे बताओ। यह बताओ कि ये सब खा-खाकर ही मैं पीएम बना था। अडाणी-अम्बानी के लिए लाबिंग करना भी अच्छा धन्धा साबित हो सकता है वरना राकेश झुनझुनवाला के साथ शेयर मार्केट में हिस्सेदारी ले लो। मतलब 71 वर्ष की उम्र में भी बहुत से काम हैं, जो आप कर सकते हो। और मोदी जी ये मेरे मन की बात है। आपके प्रधानमंत्री होने का फायदा यह हुआ है कि मैं भी अब मन की बात करना सीख गया हूँ।

व्यंग्य

मोदी जी धन्यवाद

-- विष्णु नागर

मान लीजिए देश के सौभाग्य से नरेन्दर भाई प्रधानमंत्री न हुए होते तो भारत बहुत से अनुभवों से वंचित रह जाता। हमें कैसे विश्वास होता कि कोई प्रधानमंत्री होकर भी प्रति दिन, प्रति मिनट धड़ल्ले से बिना शरमाये, डरे, झूठ बोल सकता है। इतना ही नहीं, झूठ की पोल खुलने से वह परेशान नहीं होता, क्षमा नहीं माँगता बल्कि अगला झूठ वह और अधिक ताकत से बोलता है। जरा सोचिए मई, 2014 से पहले ऐसे प्रधानमंत्री की कल्पना भी कोई कर सकता था? हे मोदी जी, आपने प्रधानमंत्री पद की इस नयी क्षमता से भारत के जन-जन का परिचय करवाया, इसके लिए देश आपका सदैव आभारी रहेगा। आपके इस पद पर पहुँचने पर ही हमें यह अमूल्य ज्ञान प्राप्त हो सका है वरना हमारा यह जीवन अकारथ चला जाता। दूसरा जन्म मिलता नहीं और मिलता तो मोदी जी नहीं मिलते और मोदी जी मान लो, मिल भी जाते तो ये वाले मोदी जी नहीं मिलते क्योंकि ओरिजनल में जो बात होती है, वह कार्बनकॉपी में नहीं होती। इस महान प्रतिभा को यहाँ तक पहुँचाने के लिए मैं लालकृष्ण आडवाणी जी का विशेष रूप से आभार प्रकट करना नहीं भूलूँगा, जिनकी असीम कृपा से मोदी जी जैसे 'रत्न' हमें मिल सके हैं। इस प्रतिभा ने आडवाणी जी को भाजपा के मार्गदर्शक मंडल का सदस्य बनाकर उनका उचित सम्मान किया है। उनका सारा ऋण चुका दिया है। उनका ऐसा निर्दोष सम्मान मोदी जी न करते तो आखिर इस देश में कौन करता और उनकी तत्परता देखिए कि उन्होंने अपना यह दायित्व प्रधानमंत्री बनते ही निभा दिया। आजकल अपने गुरु, अपने संरक्षक का कौन ऐसा सम्मान करता है? इधर देखा किसी को? उम्मीद है कि भविष्य में भी किसी को नहीं देख पाएँगे। मोदी है तो ही मुमकिन है।

मोदी जी आपके कारण ही हम सबको अज्ञान का इतना प्रकाश मिल सका है कि आँखें चौंधिया गयी हैं। आपके यहाँ अज्ञान के ज्ञानीजन इतने अधिक हैं कि आकाश के तारे शायद गिने जा सकते हैं, अज्ञान के मोदी ब्रांड इन ज्ञानीजनों को गिनना मुमकिन नहीं। आप उनके सूर्य हैं, योगी जी उनके शुक्ल पक्ष के चाँद और शाह जी कृष्ण पक्ष का अँधकार। ज्ञान का प्रकाश फैलाने का आकांक्षी कोई प्रधानमंत्री इतनी जल्दी ज्ञान का प्रकाश न फैला पाता, जितनी जल्दी आपने अज्ञान का अन्धकार फैला कर दुनिया को दिखा दिया है। यही नहीं आपने यह भी दिखा दिया है कि एक मूढ़ शासक चाहे तो तथाकथित पढ़े-लिखों को भी इतना जाहिल बनाकर दिखा सकता है, जितने जाहिल वे कतई नहीं होते, जिन्हें जाहिल माना जाता है। आपने दिखा दिया कि शीर्ष पर बैठा एक जाहिल कितनी तेजी से जाहिली का अखिल भारतीय स्तर पर उत्पादन करवा सकता है बल्कि वह इन जाहिलों को अपनी जाहिली पर गर्व करना भी सिखा सकता है।

आप प्रधानमंत्री न बने होते तो यह सब देखने को कहाँ मिल पाता! कौन यह बताता कि लोकतंत्र को भी राजतंत्र में बदला जा सकता है, जहाँ एक नीरो लाखों लोगों की लाशों के बीच अन्न उत्सव मना सकता है और विज्ञापन देकर कहता है कि इसके लिए मुझे धन्यवाद दो। और बड़े बड़े टीवी चौनलों के एंकर इस पर ताली बजाते हैं। वह वोटर को यह एहसास करा सकता है कि वह दाता है और बाकी सब भिखारी हैं। वह हमारे ही पैसे से अनाज और वैक्सीन खरीदकर हमें ही मुफ्त में देने के अहसान तले दबा सकता है। वह हमारे पैसों से शानदार हवाई जहाज और कार आदि खरीद सकता है, अपने लिए नया बंगला भी बना सकता है और जनता को कोरोना से मरने के लिए छोड़ सकता है। आपने दिखा दिया कि नीरो राजतंत्र में ही नहीं, वोटतंत्र में भी पैदा होता है, जो मौत के तांडव के बीच अपना महल तामीर करवाता है। जिस धन को लोगों को मौत के मुँह से निकालने के लिए खर्च करना चाहिए था, उसे उन इमारतों पर लुटा सकता है, जिसके शिलापट्ट पर उसका नाम दर्ज होगा।

आपने दिखा दिया कि विकास महज फर्जी आँकड़ों का खेल है, जो प्रधानमंत्री की इच्छा और कल्पना से पैदा किये जा सकते हैं, उसके लिए किसी दस्तावेज का होना जरूरी नहीं। आपने दिखा दिया कि संविधान और कानून को बदले बिना एक बड़े देश को हिन्दू राष्ट्र बनाया जा सकता है, जहाँ अल्पसंख्यक समुदाय दूसरे दर्जे के नागरिक होंगे, उन्हें जब चाहे, जहाँ चाहे, निशाना बनाया जा सकता है। उनके खिलाफ गोली मारने के नारे लगानेवाले को मंत्री की पदोन्नति दी जा सकती है और जो साम्प्रदायिक सौहार्द के पक्षधर हैं, उन्हें साम्प्रदायिक घोषित कर जेलों में सड़ाया जा सकता है। आपने दिखा दिया कि अच्छे भले विश्वविद्यालयों को कैसे बर्बाद किया जाता है और विरोध करनेवाले छात्रों को लाठी और डंडों से पीटा जाता है। उन पर गोली तक चलवायी जा सकती है। आपने दिखा दिया कि विरोधियों को शत्रु मानना ही सच्चा राजधर्म है।

और मोदी जी, आपने यह भी दिखा दिया कि नाथूराम गोडसे ही आज का असली नायक है। गाँधी पूजनीय हैं, नायक गोडसे है। आप 56 का और वह 112 इंच का सीना ताने भारत भू पर विचरण कर रहा है। और गाँधी जी, जो जीवित रहते कभी मौत से नहीं डरें थे, आज गोडसे के डर से छुपे-छुपे घूम रहे हैं मगर वे बचेंगे नहीं। इतने गोडसे हैं यहाँ कि जहाँ वह छिपने जाएँ हो सकता है, वह गोडसे का घर हो। ○

चुनावी ढकोसले के पीछे सत्ता का जन विरोधी चेहरा

-- राजेश कुमार

पूरे फरवरी महीने और मार्च के पहले सप्ताह तक पाँच राज्यों के चुनाव का आठ चरणों में होना कोई अचरज की बात नहीं है और न ही चार राज्यों में भाजपा की सरकार बनना ही कोई अचरज की बात है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि अधिकांश स्वनामधन्य चुनावी विश्लेषक इस बात से हैरान हैं कि इतनी महँगाई, बेरोजगारी और सरकार द्वारा जनता की उपेक्षा तथा जन आन्दोलनों के दमन के बावजूद भाजपा चुनाव जीत कैसे गयी! वे इस सीधी-सरल कहावत को मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि 'जिसकी लाठी, उसकी भैस'। चुनाव आयोग, ईडी, कोर्ट-कचहरी, पुलिस-प्रशासन और मीडिया पर जिसका प्रभाव है, वही तो चुनाव जीतेगा। बहुतेरे लोग दिन-रात एक करके चुनाव पर निगाह रखे हुए थे और उसके हर उतार-चढ़ाव से अपने दिल की धड़कनों को घटा-बढ़ा रहे थे। उनमें से कई लोगों को इस चुनाव से बहुत उम्मीदें थीं और चुनाव का नतीजा आने के बाद उनकी उम्मीदें धूल-धूसरित होती नजर आयीं। अमूमन, इनमें से ज्यादातर लोग सत्ता के चरित्र को नहीं समझते और न ही वे यह समझते हैं कि सरकारें बदलने से सत्ताएँ नहीं बदला करतीं। इस पर एक गाना सटीक बैठता है, 'आइना वही रहता है, चेहरे बदल जाते हैं।' इसलिए यह बात मानने में कोई बुराई नहीं कि चुनाव महज ढकोसला बन गया है। आज के राजनीतिक हालात में लोक सभा और विधान सभा के चुनावों से कोई मूलभूत बदलाव नहीं होना है। ऐसा क्यों?

भाजपा, कांग्रेस सहित सभी चुनावी पार्टियाँ पूँजीपति वर्ग की ही सेवक हैं। सत्ता की कुर्सी पर अलग-अलग पार्टियाँ बारी-बारी से भले ही बैठ जायें लेकिन सभी पूँजीपति वर्ग के लिए ही काम करती हैं। पिछले 30 सालों से वे लगातार अमरीका की चौधराहट में तैयार की गयी नयी आर्थिक नीतियों को लागू करके देशी-विदेशी पूँजीपतियों की लूट को आसान बना रही हैं जिसका नतीजा बेरोजगारी, महँगाई, अपराध, आत्महत्या, महिला असुरक्षा और भुखमरी के रूप में देश की जनता भुगत रही है। सभी सरकारों ने जनता के कल्याण के काम से हाथ पीछे खींच लिया है।

भारत के शासक वर्ग की प्रमुख पार्टियाँ खास तौर पर भाजपा इस बात को खुलकर स्वीकार करती है कि गवर्मेन्ट का काम सिर्फ गवर्नेंस है, शासन करना बाजार व्यवस्था यानी पूँजीपति घरानों या कॉर्पोरेट का काम है। इसके तहत सरकार दो तरह की जिम्मेदारी निभा रही है, पहला, पूँजी के फैसिलिटेटर की भूमिका में अधिकाधिक अनुकूल परिस्थितियाँ तैयार करना, जैसे-- पुराने श्रम कानूनों में बदलाव करके उसे कमजोर करना, कृषि कानूनों के जरिये खेती-किसानी को कॉर्पोरेट के हवाले करना, पर्यावरण सम्बन्धी बाधाओं को हटाकर जंगलों की कटाई की छूट देना और खनन के अन्धाधुन्ध पट्टे देना, टैक्स में भारी छूट, आसान शर्तों पर कर्ज, इत्यादि, और दूसरा, अब तक जिन सामाजिक सेवाओं को सरकार की जिम्मेदारी माना जाता था, जैसे-- स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवहन, सिंचाई, बिजली, जलापूर्ति, इत्यादि, उनसे पिण्ड छुड़ाकर उनका निजीकरण करना और उन्हें पूँजीपतियों के मुनाफे का जरिया बनाना।

मजबूत नेतृत्व और अपार बहुमत की सरकार फैसिलिटेटर की भूमिका में है और जहाँ से भी मुनाफा मिल सकता है, वहाँ पूँजी की पैठ बढ़ा रही है। रेलवे के एकमुश्त खरीदार नहीं, तो टुकड़े-टुकड़े में, अलग-अलग स्टेशन, अलग-अलग ट्रेनें बेच रहे हैं। सरकार ने जनता की गाढ़ी कमाई से अवरचनागत ढाँचा खड़ा किया और उनको निजी पूँजीपतियों को सौंप दिया, जैसे-- दूरसंचार, सेटेलाइट, एरोड्रम, टोल प्लाजा, स्कूल, कॉलेज, अस्पताल, शोध संस्थान, तेल के कुएँ, नदी, जंगल, खदान, जमीन, सार्वजनिक उपक्रम, सरकारी बैंक-बीमा सब कौड़ियों के मोल देशी-विदेशी पूँजी के हवाले किया जा रहा है। आन्तरिक सुरक्षा तंत्र का बहुत बड़ा हिस्सा निजी सेक्युरिटी कम्पनियों के हाथ में है। अब तो अमरीका की तरह सिर्फ जेलों का निजीकरण ही बाकी है।

चुनाव में पार्टियों को मिलनेवाले कॉर्पोरेट चन्दे से लेकर खरीद-फरोख्त के जरिये सरकार बनाने तक, आज पूँजी का जितना खुला हस्तक्षेप देखने को मिल रहा है, अब से तीस साल पहले किसी ने सोचा भी नहीं होगा। भारत सरकार ने चुनाव में पार्टियों को मिलनेवाले कॉर्पोरेट चन्दे को कानूनी जामा पहना दिया, साथ ही अब चन्दे का स्रोत बताना भी पार्टियों के लिए अनिवार्य नहीं रह गया है। चन्दा देना आसान बनाने के लिए इलेक्टोरल बॉण्ड भी जारी किया गया जिसके तहत चन्दा देनेवालों की जानकारी

गुप्त रखी जाती है। एडीआर की एक रिपोर्ट के मुताबिक वित्तीय वर्ष 2016-17 और 2017-18 में 6 राष्ट्रीय पार्टियों को कुल 1059.25 करोड़ का चन्दा मिला जिसमें से 93 प्रतिशत सिर्फ कॉर्पोरेट या बिजनेस घरानों से मिला। इसमें सबसे अधिक भाजपा को 915.59 करोड़ मिला, जबकि कांग्रेस पार्टी को मात्र 55.36 करोड़ मिला। भाजपा को मिले चन्दे में से 98 प्रतिशत बेनामी है। इलेक्टोरल बॉण्ड के कुल चन्दे का 75 प्रतिशत अकेले भाजपा को मिला और उसकी आमदनी में 81 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई।

कॉर्पोरेट या बिजनेस घरानों से मिलनेवाला यह भारी-भरकम चन्दा ही मजबूत नेतृव गढ़ने और भारत को मोदीमय बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है, इसी विपुल धन वर्षा के दम पर ही राम माधव के शब्दों में 'भाजपा अब तक इतना निपुण हो चुकी है' कि 'वह बिना चुनाव लड़े ही सरकार बना सकती है।' इसी के साथ-साथ संसद और विधान सभाओं में करोड़पतियों की प्रत्यक्ष भागीदारी भी पिछले सभी रिकार्ड तोड़ चुकी है। एडीआर की रिपोर्ट के मुताबिक नयी लोकसभा के 542 सांसदों में से 475 सदस्य करोड़पति हैं, यानी देश के कुल 2.64 लाख करोड़पति जो कुल आबादी के 0.02 प्रतिशत हैं उनका संसद में 88 प्रतिशत सीटों पर कब्जा है। और वे ही देश की शेष 99.98 प्रतिशत आबादी के भाग्यविधाता हैं। सवाल यहीं तक सीमित नहीं रह गया है कि जिसका खायेंगे, उसका गायेंगे। अब तो नेताओं को खिला-पिलाकर गवाने वाले मुट्ठीभर धनाढ्य लोग खुद ही उनकी गायन मंडली में शामिल हैं। ऐसे में नव उदारवादी नीतियों का विरोध भला कौन करेगा।

राजनीति में धनबल और बाहुबल की चरम घुसपैठ ने लोकतंत्र और चुनाव को एक तमाशा ही बना दिया है। पैसे के दम पर शोर-शराबा, रोड शो, भीड़ जुटाकर रैली-सभा, वोट बटोरने के लिए हर तरह का तिकड़म किया जाना आम बात है। संविधान में दर्ज धर्मनिरपेक्षता को ताक पर रख कर जाति-धर्म-क्षेत्र-भाषा के बँटवारे का खुलेआम इस्तेमाल किया जाता है। जनभागीदारी सिर्फ किसी एक निशान का बटन दबाने तक सीमित है। संसदीय लोकतंत्र को बरकरार रखना और येन-केन-प्रकारेण बहुमत की सरकार बनाना नव उदारवाद के लिए फायदेमन्द है, क्योंकि इससे जनता के बीच सरकार की पूँजीपरस्त नीतियों को स्वीकार्य बनाने में सहायता मिलती है। लोकप्रिय नेता और मजबूत सरकार ही जनता को भरमाने और गरल को अमृत कहकर पिलाने का काम बखूबी कर सकती है। प्रत्यक्ष तानाशाही के अधीन पूँजी की निर्मम लूट को जनता अधिक दिन तक शायद ही बर्दाश्त कर पाये। जनता का खून चूसने वाली नीतियों को देशहित, जनहित और विकास के नाम पर उनके ऊपर थोपने में शासक वर्ग की जो पार्टी सबसे शातिर, प्रपंची और तिकड़मबाज होती है, उसे ही पूँजीपति का वरदहस्त प्राप्त होता है। अब तो हद ही हो गयी है, जनता का सबकुछ छीनकर बदले में 5 किलो राशन की भीख देने का प्रपंच रचा जा रहा है ताकि भूख से मरती जनता मुँह में अन्न के दो दाने जाते ही मोदी की जयकार करे।

राजसत्ता जनता के बीच पूँजीपरस्त नीतियों को किस तरह छल-प्रपंच करके स्वीकार्य बनाती है उसका एक उदहारण नोटबन्दी है। इसे लागू करते हुए मोदी ने कहा था कि इससे आतंकवाद और काला धन दूर होगा, जबकि विश्व बैंक की इस योजना का असली मकसद बड़ी पूँजी के हित में कैशलेस लेनदेन, ई-कॉमर्स, इन्टरनेट बैंकिंग और पेटीएम को बढ़ावा देना था। काला धन और आतंकवाद का तो कुछ नहीं बिगड़ा, लेकिन इसने छोटे व मध्यम उद्योगों और कारोबारियों की कमर तोड़ दी। लाखों की संख्या में उद्योग-धन्धे चौपट हुए और उनमें काम करनेवाले असंख्य मजदूरों को नौकरी से हाथ धोना पड़ा। विपक्ष में रहते भाजपा ने जिस जीएसटी को टैक्स टेररिज्म कहा था उसे "एक राष्ट्र, एक टैक्स" के नाम पर लागू किया, जिसकी असलियत सबको पता है। प्रधानमंत्री के नाम पर बीमा योजना और पेंशन योजना चलाया जाना और बीमा कम्पनियों के कारोबार को बढ़ाना भी इस बात की मिसाल है कि राजसत्ता किस तरह पूँजीपरस्त नीतियों को जनता के गले उतारती है और उसे सर्व स्वीकार्य बनाती है।

ऐसी हालत में जब सरकार जनता के खिलाफ काम करने लगे। जनता की तकलीफें बढ़ती जायें तो जन-विरोधी सरकार की मुखालफत ही वाजिब कदम है। लेकिन विरोध कैसे करें, जब लोकतंत्र ही खतरे में हो। आवाज उठाने पर बन्दिश लगा दी जाये। बात-बात पर धारा 144 लगाकर सामूहिक आयोजन को रोक दिया जाये। सत्ता जनता की आवाज दबाने के लिए फासीवादी तौर-तरीके अपनाने लगे।

ऐसी स्थिति में फौलादी इरादे वाले नौजवानों की जरूरत होती है, जो किसी भी मुश्किल हालात से घबराते न हों और उनका डटकर मुकाबला कर सकते हों। ऐसे नौजवान जो सहरा में दरिया निकाल सकते हों, वे ही इतिहास की धारा मोड़ सकते हैं। उन्हीं के कन्धों पर समाज के पुनर्निर्माण की जिम्मेदारी होती है। ऐसे नौजवानों को आगे आना चाहिए और समाज बदलने की जिम्मेदारी को स्वीकार करना चाहिए।

जनता ही सबसे बड़ी ताकत है, अगर वह एकजुट हो जाये। एक तानाशाह जनता की इसी ताकत से सबसे अधिक घबराता है। वह हर चन्द कोशिश करता है कि जनता टुकड़े-टुकड़े में बँटी रहे और शासक वर्ग की लूट बरकरार रहे। इसलिए फौलादी इरादे वाले नौजवान ही जनता की एकता कायम कर सकते हैं और वे जनता के साथ मिलकर पूँजीपतियों की लूट पर लगाम लगा सकते हैं तथा एक बेहतरीन व्यवस्था का निर्माण कर सकते हैं। ○

श्रद्धांजलि

एजाज अहमद : एक प्रतिबद्ध बुद्धिजीवी का जाना

-- प्रभात पटनायक

एक उत्कृष्ट जनपक्षधर, अन्तरराष्ट्रीय बुद्धिजीवी एजाज अहमद का 9 मार्च को इरविन, कैलिफोर्निया में निधन हो गया। उन्होंने न केवल समकालीन दुनिया की विभिन्न घटनाओं का मार्क्सवादी दृष्टिकोण से विश्लेषण किया, बल्कि मार्क्सवाद पर किये जानेवाले हमले और घुसपैठ से मार्क्सवादी सिद्धान्त का बचाव किया, खास तौर पर ऐसे लोगों से जो मार्क्सवादी होने का दावा करते थे लेकिन खुद ही इन प्रवृत्तियों के शिकार थे। अपनी क्लासिकीय रचना-- *इन थ्योरी : क्लासेज, नेशंस, लिटरेचर्स* में उन्होंने उत्तर-संरचनावाद और उत्तर-मार्क्सवाद जैसी प्रवृतियों की आलोचना प्रस्तुत की, जो उस समय पश्चिमी अकादमिक जगत में मार्क्सवाद की कीमत पर और वास्तव में किसी भी व्यवहारिक कार्य की कीमत पर तेजी से फैशन बनती जा रही थी। यह तथ्य कि लिंग, नस्ल, साम्राज्यवाद और पर्यावरण जैसे कई मुद्दों पर जो आज लोगों को उत्तेजित करने वाले हैं, उन पर मार्क्स ने बहुत कम लिखा था, जिसने मार्क्सवाद विरोधियों के इस प्रयास को सुविधाजनक बनाया।

हालाँकि उत्तर-संरचनावाद और उत्तर-मार्क्सवाद के खिलाफ होते हुए भी, एजाज मूल रूप से मार्क्सवाद की अपूर्णता से अच्छी तरह वाकिफ थे, जहाँ तक पहुँचा कर इसके मार्गदर्शकों ने इसे छोड़ा था, लेकिन साथ ही उन्होंने क्रान्तिकारी व्यवहार की केन्द्रीयता पर भी जोर दिया था जिसे इसके मार्गदर्शकों ने रेखांकित किया था। क्रान्तिकारी कार्रवाई को केन्द्रीय महत्त्व देने के मामले में ही मार्क्सवाद बाकी सभी प्रवृत्तियों से अलग रहा है। इसी तरह, एजाज ने असली मार्क्सवादी अवधारणाओं की शक्ति पर प्रकाश डाला, जबकि मार्क्सवाद को अधिक "पूर्ण" या अधिक "यथार्थवादी" बनाने के नाम पर उसमें विजातीय अवधारणाओं का घालमेल करने, उसे हल्का करने या बदलने के सभी प्रयासों को खारिज कर दिया।

हालाँकि, उल्लेखनीय यह है कि मार्क्सवाद को कायम रखने में, एजाज आर्थिक निर्धारकों पर अति-निर्भरता की ओर नहीं फिसले, जो कि मार्क्सवाद का बचाव करने वाले ऐसे सभी प्रयासों से अलग और खास है। यह वास्तव में काफी स्वाभाविक रहा होगा क्योंकि फ्रांसीसी दार्शनिक लुई अल्थूसर ने जिस संरचनावादी मार्क्सवाद का बीड़ा उठाया था, जो इन वैकल्पिक प्रवृत्तियों वाले कई लोगों के लिए शुरुआती कदम था, उसने मार्क्सवाद के केन्द्र-बिन्दु से आर्थिक निर्धारक को हटा दिया था। (एंगेल्स की इस टिप्पणी के सन्दर्भ में कि "आर्थिक" निर्धारक "अन्तिम रूप से" निर्धारक होता है, अल्थूसर ने कहा था कि "पहले से अन्तिम तक, अन्तिम रूप का यह एकाकीपन कभी नहीं आता")।

इसके अलावा, आर्थिक निर्धारक के विचार में कुछ भी गलत नहीं है; इसके विपरीत, यह मार्क्सवाद द्वारा विमर्श में किये गये परिवर्तन का सार है, और इसके अभाव में चलनेवाले सामाजिक और राजनीतिक विश्लेषण के अनुत्पादक ठहराव को तोड़ता है। मार्क्सवादी नेता बी. टी. रणदिवे की जानबूझकर उत्तेजक, जानबूझकर अतिरंजित टिप्पणी मुझे याद है जिसमें उन्होंने आँखों में एक चमक के साथ (हालाँकि उसमें सच्चाई का एक मजबूत आधार भी था) कहा कि "अगर इब्राहिम-रहीमतुल्लाह का व्यापारी घराना महामन्दी के दौरान ध्वस्त नहीं हुआ होता, तो भारत का विभाजन टाला जा सकता था"; यह टिप्पणी, हालाँकि पहली नजर में "न्यूनीकरणवादी" प्रतीत होती है, लेकिन विभाजन पर चर्चा के लिए एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है जो आमतौर पर उदारवादी प्रवचन में पूरी तरह से गायब होती है (जैसे बड़े पूँजीपति वर्ग की एक बड़े, एकीकृत बाजार की लालसा; आजादी से पहले के बड़े पूँजीपतियों के बीच किसी मुस्लिम प्रतिनिधि की अनुपस्थिति, जो देश के एकमात्र बड़े मुस्लिम स्वामित्व वाले घराने के पतन के कारण हुआ था; इत्यादि)।

चर्चाओं में ऐतिहासिक गहराई

हालाँकि, पश्चिम के विपरीत, भारत में मार्क्सवादी विमर्श पर, कम से कम हाल-फिलहाल, अर्थशास्त्रियों और आर्थिक इतिहासकारों का प्रभुत्व था। एजाज ने राजनीतिक अर्थव्यवस्था के बारे में पूरी जानकारी होने के बावजूद उनमें सुधार किया। उन्होंने ऐसा आर्थिक निर्धारकों के महत्त्व पर विवाद करके नहीं, बल्कि अलग-अलग मुद्दों पर अपना विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए शायद ही कभी उनके चक्कर में पड़े बिना ऐसा किया। इसके बजाय,

उन्होंने जो चीज अपनी चर्चा में लायी वह थी एक ऐतिहासिक गहराई-- केवल व्यापक रूप से समान दिखने वाली घटनाओं को एक साथ समेटने के बजाय उनके बीच भेद किये जाने पर जोर; और प्रत्येक घटना की जटिल ऐतिहासिक जड़ों तक जाना। मार्क्सवाद के प्रति इसी दृष्टिकोण के चलते, यानी आसानी से उपलब्ध आर्थिक निर्धारकों पर वापस आने की अनिच्छा, और प्रत्येक घटना की ऐतिहासिक जड़ों को श्रमसाध्य रूप से खोलने कि वजह से, एजाज ने मार्क्सवाद के अनोखे चरित्र का सृजन किया। इसी अर्थ में वे वास्तव में मौलिक मार्क्सवादी विचारक थे।

निस्सन्देह इस विशेषता के अच्छे के साथ-साथ बुरे पक्ष भी थे। इसने छात्रों के नये युवा दिमागों को पसन्द आयी, जो मार्क्सवाद के नाम पर अर्थशास्त्र की पढ़ाई से खीझे हुए थे, सभी बौद्धिक उत्तेजनाओं से वंचित थे क्योंकि मार्क्सवाद को दर्शन, साहित्य, संस्कृति और सौन्दर्यशास्त्र जैसे दूसरे क्षेत्रों में लागू करने का वादा किया गया था, और एजाज जिन विजातीय प्रवृत्तियों के खिलाफ लड़ रहे थे, वे वास्तव में इन युवा दिमागों में घुसा दिये गये थे। मार्क्सवाद को अर्थशास्त्र के प्रमुख दायरे से बाहर निकालकर, एजाज के काम ने इसे एक बार फिर युवाओं के लिए रोमांचक बना दिया। दूसरी ओर, हालाँकि, इसमें भेदभाव करने की अपनी प्रवृत्ति से उत्पन्न होने वाली एक भयावहता थी जो समान सामाजिक और राजनीतिक घटनाओं (एक जैसी आर्थिक जड़ें होने के अर्थ में समान) को व्यवहार में लाने के लिए व्यापक वर्गीकरण को रोकती थी; विस्तार में जाने पर एक जैसी परिघटनाओं को एक साथ मिलाकर जाँचने-परखने में बाधक बनने की प्रवृत्ति थी।

भारत में फासीवाद की ओर मुड़ने के बारे में

एजाज के मार्क्सवाद का यह अनोखा चरित्र, यानी कॉमिन्टर्न से प्रेरित न होने के बावजूद कम्युनिस्ट होना है, जो इसके प्रति लगाव की ताजगी का एक महत्त्वपूर्ण कारण है, यह भी उनके बौद्धिक बनावट का एक उत्पाद था। उदाहरण के लिए, हिन्दुत्व पर उनके लेखन और भारत में फासीवादी उभर पर विचार करें। इस मुद्दे पर उनके लेखन के पूरे संग्रह में, प्रसिद्ध कम्युनिस्ट नेता जॉर्जी दिमित्रोव का शायद ही कोई उल्लेख है, जो राखस्टाग अग्नि काण्ड में मुख्य आरोपी थे, तथा बाद में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के अध्यक्ष बने और कॉमिन्टर्न की सातवीं कांग्रेस में फासीवाद के बारे में बुनियादी कम्युनिस्ट सिद्धान्त को विकसित किया। कोई भी पारम्परिक कम्युनिस्ट, या उस शैली से सम्बन्धित मार्क्सवादी, अपने विश्लेषण में दिमित्रोव का सहारा लेता कि क्या भारत फासीवादी दिशा में जा रहा है, लेकिन एजाज ने ऐसा नहीं किया। उनका विश्लेषण समृद्ध है, चाहे कोई इससे सहमत हो या नहीं, लेकिन पारम्परिक कॉमिन्टर्न-प्रेरित मार्क्सवाद के चौखटे तक ही सीमित नहीं है। यही कारण है कि यह बहुत ही ताजगी भरा है और रहस्यमय नहीं है, और आज के छात्रों और युवा पाठकों को अपील करता है। यह एक ऐसे दिमाग की उपज है जो अनिवार्य रूप से पश्चिम में प्रशिक्षित है, पश्चिमी बौद्धिक परम्परा में डूबा हुआ है, और इसलिए कॉमिन्टर्न मार्क्सवाद के कई उबाऊ लक्षणों से मुक्त है, लेकिन फिर भी साम्यवाद के प्रति वफादार है।

पश्चिम में कई नये वामपंथियों के विपरीत, एजाज पारम्परिक कम्युनिस्ट पार्टियों पर अपनी नाक-भौं नहीं सिकोड़ते थे; इसके विपरीत, वे किसी भी अर्थपूर्ण व्यवहारिक कार्रवाई को आगे बढ़ाने के लिए परम्परागत वामपंथियों के साथ मिलकर काम करने में दृढ़ विश्वास रखते थे, जो उनके अनुसार मार्क्सवाद का सार था।

वे कुर्सीतोड़ या अकादमिक मार्क्सवादी होने से बहुत दूर थे। इस मायने में वे बहुत ही भारतीय थे-- भारत दुनिया के उन कुछ देशों में से एक है जहाँ युवा लोग अभी भी पारम्परिक वामपंथ की ओर आकर्षित हैं; पाकिस्तान में जहाँ एजाज का परिवार विभाजन के बाद पलायन कर गया था, आजादी के तुरन्त बाद कम्युनिस्टों को दबा दिया गया था, जिसके चलते कम्युनिस्ट अवधारणाएँ, विमर्श और इतिहास काफी पहले हाशिये पर चले गये, तथा एजाज जैसे युवा और आमूल-परिवर्तनवादी दिमाग वाले छात्रों को उस विरासत तक पहुँचने से रोक दिया गया। लेकिन उस विरासत के प्रति सैद्धान्तिक जानकारी की वजह से एजाज के भीतर लगाव पैदा हुआ और उनके साथ हमेशा बनी रही, जिसे वे भारत वापस आने और 1980 के दशक के अन्त में इस देश को अपना घर बनाने के बाद ही पूरा कर सकते थे।

'घर वापसी'

उनकी 'घर वापसी' एक और कारण से महत्त्वपूर्ण थी। प्रगतिशील लेखक संघ के प्रारम्भिक दिनों से ही देश में साहित्यिक सिद्धान्त, संस्कृति और सौन्दर्यशास्त्र पर चर्चा की जीवन्तता काफी कम हो गयी थी। निस्सन्देह, बंगाल, केरल, तमिलनाडु और महाराष्ट्र ऐसे क्षेत्र थे जहाँ इस तरह की चर्चा जारी थी, लेकिन उत्तर भारत के अधिकांश हिस्से में इसका नुकसान हुआ था। यह चर्चा प्रगतिशील, विशेष रूप से कम्युनिस्ट आन्दोलन से प्रेरित थी, और उस आन्दोलन के कमजोर होने से सुस्त पड़ गयी थी, जिसके पीछे शुरू में "सामाजिक न्याय" आन्दोलन और बाद में साम्प्रदायिक फासीवादी हमला एक प्रमुख कारक था। एजाज के आने से यह चर्चा फिर से जीवन्त हो गयी; सुधी श्रोता अब एक बार फिर से वास्तव में जानकार व्यक्ति की ओर मुखातिब हो सकते थे और उन मुद्दों पर फिर से चर्चा कर सकते थे जिन्हें काफी समय से भुला दिया गया था। एक वक्ता के रूप में उनकी काफी माँग थी। जिस स्पष्टता के साथ उन्होंने जटिल समस्याओं के बारे में अपनी

अन्तर्दृष्टि प्रस्तुत की, उसे हर जगह दर्शकों ने खूब सराहा।

जैसा कि अनगिनत मुस्लिम प्रवासियों के मामले में हुआ, विभाजन ने एजाज के जीवन में एक प्रमुख भूमिका निभायी। उत्तर प्रदेश में अपने पुश्तैनी गाँव से कम उम्र में उजड़ गये और ऐसे माहौल में पले-बढ़े जो एक जवान लड़के को बिलकुल अजीब लगा होगा और वे पाकिस्तान में अपनी प्रारम्भिक शिक्षा के बाद एक बार फिर विदेश चले गये। उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका और कनाडा के कई विश्वविद्यालयों में अध्यापन करते हुए एक खानाबदोश जीवन बिताया, लेकिन किसी एक स्थान पर बसने में असमर्थ रहे। मेरे एक अमरीकी मित्र, जो एक जाने-माने मार्क्सवादी अर्थशास्त्री हैं, वे याद करते हैं कि एजाज से नियमित रूप से एक निश्चित अवधि में न्यूयॉर्क के एक पार्क में मुलाकात होती थी, जहाँ एजाज अपने बच्चे को पार्क में लेकर आया करते थे; वे उस समय बच्चे की देखभाल कर रहे होते थे, जब उनकी पत्नी काम पर गयी होती थी। मेरे अर्थशास्त्री मित्र भी बिलकुल इसी तरह के मिशन पर थे। औरत-मर्द के पारम्परिक काम के बँटवारे से बिलकुल उलटा था जहाँ पति बच्चे की देखभाल करे, जबकि पत्नी काम पर जाये, यह न केवल वैवाहिक जीवन में काम के निष्पक्ष विभाजन के प्रति एजाज की प्रतिबद्धता को प्रमाणित करती है, बल्कि अपने स्वयं के कैरियर के प्रति कुछ हद तक अपरम्परागत दृष्टिकोण के अनुसार भी, उनका कुछ हद तक नौकरी "पकड़ने" (और प्रिय जीवन के लिए उस पर टिके रहने) के प्रति उदासीन रवैया था।

जब एजाज भारत लौटे तभी उनको एक ऐसी जगह मिली, जिसे वे घर कह सकते थे; तथ्य यह है कि उन्होंने अपने जीवन का सबसे लम्बा हिस्सा, दो दशकों से भी अधिक समय इस देश में बिताया, उस अपनेपन की भावना को बताता है जिसे उन्होंने यहाँ अनुभव किया होगा। वह नेहरू मेमोरियल संग्रहालय और पुस्तकालय के फेलो और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में सेंटर फॉर पॉलिटिकल स्टडीज में विजिटिंग प्रोफेसर बने; बाद में उन्होंने जामिया मिलिया इस्लामिया में खान अब्दुल गफ्फार खान पीठ पर नियुक्त हुए। उन्होंने भारतीय इतिहास कांग्रेस के सत्रों में भाग लिया, *द मार्क्सिस्ट* और *सोशल साइंटिस्ट* जैसी वामपंथी पत्रिकाओं के लिए लिखा और *फ्रंटलाइन* में अक्सर उनकी रचनाएँ प्रकाशित हुईं। उन्होंने सफदर हाशमी मेमोरियल ट्रस्ट (सहमत) द्वारा आयोजित कार्यक्रमों में नियमित रूप से भाग लिया। उनकी रचनाएँ तुलिका बुक्स से प्रकाशित हुईं और एक नये प्रकाशन, लेफ्टवर्ड बुक्स से भी जुड़े।

लेकिन वे यहाँ भी नहीं बस सके, इस बार किसी आन्तरिक बेचैनी के कारण नहीं, बल्कि नौकरशाही की झंझटों के कारण। भले ही इस समय तक उन्होंने अपनी पाकिस्तानी नागरिकता छोड़ दी थी, लेकिन केवल यह तथ्य कि एक समय वह एक पाकिस्तानी नागरिक थे, भारत सरकार की नजर में उन्हें जीवन भर निशाना साधने के लिए पर्याप्त था। इस वजह से न केवल उन्हें भारतीय नागरिकता नहीं मिल पायी, बल्कि बार-बार वीजा नवीनीकरण की माँगों के कारण भारत में उनके प्रवास में विराम लग गया। फिर भी जब तक नरेंद्र मोदी सरकार सत्ता में नहीं आयी, तब तक उन्होंने समस्या का मुकाबला कुशलता से किया, जिसके ठीक बाद उन्होंने कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, इरविन से तुलनात्मक साहित्य के अध्यक्ष पद का निमंत्रण स्वीकार करने का फैसला किया, जिस पर पहले फ्रांसीसी दार्शनिक जाक देरीदा विराजमान थे। एजाज के लिए देश छोड़ना एक दुखद क्षण था लेकिन आखिरकार उन्होंने ऐसी जगह बसने का इरादा किया जिसे वे अपना कह सकें और कैलिफोर्निया के एकान्त वातावरण में जाने का फैसला किया, और वह भी जीवन के ऐसे समय में जब कोई यात्रा का आनन्द नहीं लेना चाहता है; लेकिन विभाजन की विरासत ऐसी थी कि इसमें कोई मदद मिलाने वाली नहीं थी।

यह आखिरी बार था जब वे भारत आये थे; वे फिर कभी वापस नहीं आये। एजाज एक अद्वितीय व्यक्तित्व, साम्यवाद और "पश्चिमी मार्क्सवाद" (एक प्रमुख प्रभाव के रूप में ग्राम्शी के साथ) का एक उल्लेखनीय मिश्रण थे, पश्चिमी उत्तर प्रदेश की संस्कृति और मार्क्सवादी अक्खड़पन, जो मूर्खों को आसानी से नहीं झेल पाता, काम की खातिर लम्बे समय तक अकेलेपन को स्वीकार करने के लिए इच्छुक क्रान्तिकारी बुद्धिजीवी की तपस्या के साथ-साथ स्वादिष्ट भोजन और पुरानी हिन्दुस्तानी फिल्मों से प्यार। उनका जाना, देश के राजनीतिक और बौद्धिक जीवन में एक अपूरणीय शून्य छोड़ गया; उनके कई दोस्तों के लिए, जिनमें खुशाकिस्मती से मैं खुद भी शामिल हूँ, यह एक त्रासद नुकसान है। ○

मनुष्य की हत्या हो रही है
गुनाह यह है कि वह अल्पसंख्यक था
और होरी की तरह अपने दरवाजे पर
गाय पालना चाहता था

बहुत भयावह और कारुणिक है यह सब
यह जो नया राष्ट्र-राज्य बन रहा है
जिसे 'नया भारत' कहा गया है

दो चीजें विदा कर दी गयी हैं : शर्म और संवेदना
दो चीजें रह गयी हैं : तकलीफ और दहशत

-- पंकज चतुर्वेदी

वैज्ञानिकों की गहरी खामोशी

-- सी पी राजेन्द्रन

भारत के पहले खगोल भौतिकविज्ञ और निर्वाचित सांसद मेघनाद साहा ने दिसम्बर 1954 में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को लिखा था-- "मेरा आपसे निवेदन है कि आप बिलकुल इयागो* जैसे लोगों की बातों में आकर अपनी डेसडेमोनाओं का गला मत घोंटिये। मुझे कभी-कभी लगता है कि आपके चारों ओर इयागो जैसे बहुत से लोग हैं; जैसा कि इतिहास में सत्ता और प्रतिष्ठा वाले हर व्यक्ति के साथ होता रहा है।" दुःखी साहा ने शेक्सपीयर के नाटक 'ओथेलो' का हवाला देकर विज्ञान के उन बुरे हालातों पर दुःख जताया, जिनमें तत्कालीन प्रधानमंत्री के धूर्त्त सलाहकारों द्वारा विज्ञान और राज्य के मधुर सम्बन्धों को नष्ट किया जा रहा था।

एक भुला दी गयी गौरवशाली परम्परा

हम उस नेहरूवादी समय से बहुत दूर आ गये हैं, जब प्रधानमंत्री की प्रत्यक्ष आलोचना करने पर भी वैज्ञानिकों की प्रशंसा होती थी। कुछ सालों से असहिष्णुता और अन्धविश्वास को बढ़ावा देने वाला एक घातक राजनीतिक परिदृश्य विकसित हो गया है। यह प्रमाणित वैज्ञानिक तरीकों और जाँच की उनकी आजादी के लिए प्रतिकूल साबित हुआ है। ज्ञान सृजन के लिए किसी को भी चिन्तन और खुद को मुक्त रूप से अभिव्यक्त करने के योग्य होना चाहिए। लोकतंत्र के फलने-फूलने के लिए असहमति को भी जगह देने की जरूरत होती है। क्या हमारे वैज्ञानिक विचारों की आजादी के पक्ष में और छद्म विज्ञान के खिलाफ बहस खड़ी ना होने के लिए पर्याप्त रूप से मुखर हैं? उनकी खामोशी ने इस अनुभूति को जन्म दिया है कि अन्धराष्ट्रवाद और अतिराष्ट्रवाद एक खतरनाक माहौल के उभार हैं। सामाजिक रूप से प्रतिबद्ध साहा जैसे वैज्ञानिकों की गौरवशाली परम्परा को भुला दिये जाने के वे भी सह-अपराधी हैं।

2015 में 102वीं भारतीय विज्ञान कांग्रेस से हाल-फिलहाल तक के बहुत से अवसरों पर हमने वैज्ञानिकों और वैज्ञानिक संस्थाओं के इस प्रतिरोध की कमी को देखा है। अन्धराष्ट्रवाद और सड़े विज्ञान को इस प्रतिष्ठित सम्मेलन के एक सत्र में जगह कैसे मिल गयी? कैसे देश के चोटी के वैज्ञानिकों की उच्च कमेटी ने इसे जाँचा और मान्यता दी?

प्राचीन और मध्यकालीन भारत में विज्ञान द्वारा किये गये योगदान को पूरी तरह किनारे करके उसी मंच पर प्राचीन 'भारत' को तमाम आधुनिक ज्ञान का स्रोत बताने जैसे हास्यास्पद दावे किये गये। भारतीय वैज्ञानिकों में वैज्ञानिक नजरिये की कमी से हमेशा दुःखी रहे दिवंगत पुष्प भार्गव जैसे वैज्ञानिकों को छोड़कर, विज्ञान के हमारे अधिकतर पुरोधाओं ने प्रत्यक्ष रूप से गलत चीजों को नजरअन्दाज किया। जिम्मेदार राजनेताओं द्वारा दिये जाने वाले विज्ञान सम्बन्धी बेहूदा बयान तभी से लगातार प्रसिद्धी पा रहे हैं। यहाँ तक कि जब एक पूर्व केन्द्रीय मंत्री ने डार्विन के सिद्धान्त को वैज्ञानिक रूप से गलत ढहराया तो भी कुछ को छोड़कर अधिकतर वैज्ञानिक खामोश रहे। पिछले दिनों राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ प्रमुख ने झूठी बात कही कि पिछले चालीस हजार सालों से भारत के सभी नागरिकों का डीएनए एक ही जैसा रहा है। उनका सन्देश साफ तौर पर उस प्रमाणित तथ्य के खिलाफ है जिसके अनुसार भारतीय लोग अफ्रीकी, भूमध्यसागरीय और यूरेशियाई मैदानों से उत्पन्न आनुवांशिक वंशों से मिलकर बने हैं। संशोधनवादी इतिहास लेखन के एक हिस्से के रूप में अब आईआईटी खडगपुर ने साल 2022 का कैलेण्डर जारी किया है। इसका उद्देश्य है-- सिन्धु घाटी सभ्यता को वैदिक संस्कृति की नींव के पक्ष में तर्क देना। यह एक ऐसा मत है जो तमाम तथ्यों के खिलाफ है। सिन्धु घाटी सभ्यता के एक सींग वाले बैल की मोहर को झूठमूठ में घोड़ा कह देने से तथ्यात्मक शून्यता का समाधान नहीं होगा।

इस अवैज्ञानिक माहौल में सड़े विज्ञान के प्रचारक भांड और नये जमाने के 'गुरु' चमक रहे हैं। ये अक्सर ऐसे मनगढ़न्त किस्सों का प्रचार करते रहते हैं, जैसे गौ उत्पादों से कोरोना का इलाज, और यहाँ तक कि समलैंगिकता का भी इलाज, मानो यह कोई बीमारी हो।

हमारा सामाजिक और राजनीतिक जीवन अप्राकृतिक रूप से 1930-40 के फासीवादी युग के साथ मेल खाता है, जब एडोल्फ हिटलर और बेनितो मुसोलिनी ने तर्क दिया था कि 'अशुद्ध नस्लों' की तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण 'स्वेत नस्ल' प्राणघातक

---

*शेख्सपीयर के नाटक ओथेलो की नायिका डेसडेमोना नायक ओथेलो से प्यार करती है, लेकिन इयागो इस बात को लेकर नायक से जलता रहता है। उसी इयागो की ओर इशारा है।-- अनु.

जनसांख्यिकीय प्रतियोगिता में फँस गयी है। यह हमारे मौजूदा राजनीतिक माहौल में इस बात को दर्शाने के लिए शिक्षाप्रद हो सकता है कि कैसे विज्ञान इस तरह के प्रतिगामी नजरिये के खिलाफ दीवार खड़ी करने में विफल रहा। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले में विज्ञान के इतिहासकार ममियो मुजोटो ने बताया कि कैसे इटली में फासीवादी शासन ने तरह-तरह की धमकियों और निगरानी की चालबाजियों से विद्वानों को शासकों की सोच का ताबेदार बनाया। एक वास्तविक फासीवाद विरोधी चुनाव तैयार न कर पाने के चलते विद्वानों ने ऐसा किया। विरोध के बजाय वे स्वार्थी होकर किनारे हट गये। इसकी वजह से इटली के स्वार्थी और कैरियरवादी वैज्ञानिक मूर्खों की तरह निजी तौर पर तो फासीवाद का मजाक उड़ाते थे, लेकिन उसे सार्वजनिक रूप से गलत कहने का जोखिम नहीं लेते थे। इटली की तरह ही नाजीवादी दौर में 'दूसरे लोगों को अपने से हीन समझने' की सोच और नस्लवाद राजनीतिक परिदृश्य का एक बहुत महत्त्वपूर्ण हिस्सा था, जिसमें चोटी के वैज्ञानिकों को यहूदी होने के चलते देश छोड़ना पड़ा।

ताबेदारी के कारण

सैद्धान्तिक भौतिकवादी नरेश दधीच ने अपने एक लेख में कहा था कि इस मौन सहमति का एक कारण है कि वैज्ञानिक अनुसन्धान लगभग पूरी तरह सरकारी अनुदान पर निर्भर होते हैं। इसलिए परिणाम का डर सामाजिक जुड़ाव के विचार के खिलाफ काम करता है। इसके साथ ही दूसरा वैध कारण है, हमारे सारे समकालीन वैज्ञानिक अनुसन्धानकर्ता उदार बौद्धिक विमर्श से कटे हुए हैं। यह आजादी के शुरुआती सालों से बिलकुल अलग तरह की स्थिति है। अधिकतर वैज्ञानिकों के लिए आज भी पद्धति के रूप में विज्ञान बाहरी चीज बना हुआ है। उनमें से अधिकतर का समाज-विज्ञानों का ज्ञान विश्वविद्यालय के न्यूनतम स्तर तक ही सीमित है। वैश्विक रूप से दूसरी शाखाओं की तुलना में विज्ञान के छात्रों ने परोपकारिता और तर्कशीलता के काम कम किये हैं, जो उनमें सामाजिक जिम्मेदारी की कमी को दिखाता है। यह आरोप सीधे हमारी वैज्ञानिक शिक्षा पद्धति पर जाता है। विज्ञान और तकनीक आधारित अग्रिम संस्थान छात्रों को सीधे स्कूल से भर्ती करते हैं और अपने पाठ्यक्रम में सामाजिक विज्ञान के केवल एक दो ही पाठ्यक्रमों को शामिल करते हैं। इस तरह अधिकतर छात्र सामान्य उदार बौद्धिक विमर्श से अपरिचित रहते हैं। यह चिन्ता का बड़ा मसला है। 21वीं सदी भारत सहित दुनिया के विभिन्न हिस्सों में फासीवादी प्रवृत्ति के साथ तानाशाही, असहिष्णुता और पलायन का गवाह बन रही है। हम उस समय में जी रहे हैं, जब प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से पर्यावरण पर प्रभाव की वैज्ञानिक सलाहें सार्वजनिक नीतियों पर बहस में हाशिये पर धकेल दी गयी हैं।

20वीं सदी की शुरुआत में बहुत से अगुआ वैज्ञानिकों को दर्शन की गहरी समझ थी। उन्होंने समाज पर विज्ञान के निहितार्थों के बारे में अलग नजरिया विकसित किया था। वे सामाजिक मुद्दों पर कहीं अधिक सक्रिय थे। उस विरासत की निरन्तरता टूटी हुई लगती है। एक डरा हुआ वैज्ञानिक अकादमिक खोज की पंथनिरपेक्ष स्वायत्तता को कायम रखने में सक्षम नहीं है। युवा शोधकर्ताओं के लिए इस सांस्कृतिक खालीपन को भरने के लिए विज्ञान की शिक्षा में शिक्षाशास्त्रीय चीजें जरूर डाली जानी चाहिए। यह छात्रों को सभ्य समाज और लोकतांत्रिक ढाँचे को कमजोर करने वाले सिद्धान्तों के खिलाफ विचारशील कदम उठाने में सहायता करेगा।

(द हिन्दू, 4 जनवरी 2022 से साभार ,

अनुवादक-- सत्येन्द्र)

ज्वालामुखी के मुँहाने पर बैठ रंगरेलियाँ मनाते पूँजीपति

राजनैतिक वैज्ञानिक नीरा चंदोक 'द ट्रिब्यून' में छपे अपने लेख 'लोकतंत्र को चाहिए कि वह आर्थिक खाई को पाटे' के जरिये चेतावनी देती हैं कि "बाजार के रक्षक यह भूल जाते हैं कि वंचितों की जरूरतों के प्रति उदासीन रहने वाला समाज अपने अन्तर्विरोधों को जन्म देता है। हमने पिछले महीने इस हताशा का एक उदाहरण देखा जब हजारों बेचैन, नाकाम और नाराज लोगों ने ट्रेन के डिब्बों में आग लगा दी। उनका गुस्सा समझा जा सकता है। यह शायद संकट की शुरुआत है। बेरोजगारी का संकट राजनीतिक असन्तोष को लगातार बढ़ाएगा।"

2022 की ऑक्सफैम रिपोर्ट, 'इनइक्वैलिटी किल्स' (असमानता जान ले लेती है) के अनुसार, 2021 में, 4.6 करोड़ भारतीय अत्यधिक गरीबी की खाई में गिर गये। इसी साल अरबपतियों की सम्पत्ति 23.14 लाख करोड़ रुपये से बढ़कर 53.15 लाख करोड़ रुपये हो गयी। सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनॉमी की रिपोर्ट है कि 3.05 करोड़ भारतीयों में से 95 प्रतिशत, जिनमें से 95 प्रतिशत 29 वर्ष से कम आयु के हैं, बेरोजगार हैं।

इन बातों से स्पष्ट है कि भारत के पूँजीपति ज्वालामुखी के मुँहाने पर बैठकर रंगरेलियाँ मना रहे हैं। वे कब तक सुरक्षित हैं, भगवान ही जाने!

भारत में बेघर लोगों की स्थिति

"तुम्हारी फाइलों में गाँव का मौसम गुलाबी है
मगर ये आँकडें झूँठे हैं, ये दावा किताबी है।"

अदम की उक्त पंक्तियाँ देश की अर्थनीति और राजनीति के बारे में स्पष्टता और साफगोई दिखती है। बीते दिनों प्रधानमंत्री ने अपना जो अभिभाषण संसद में दिया, उसमें उन्होंने गरीबों का मजाक उड़ाते हुए कहा, "आज देश के गरीब के पास अपना घर है और वह लखपती हो गया है।" जिस प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत लोगों को घर देने का दावा इस भाषण में किया जा रहा था, उसकी असलियत अखबार और मीडिया रिपोर्टों में पहले ही आ चुकी है। फिलहाल, दिल्ली की जिस संसद में वे गरीबों को घर देने के नाम पर अपनी पीठ थपथपा रहे थे, उसी दिल्ली में जनवरी के शुरुआती बीस दिनों में ठंड से एक सौ छः लोग असमय काल के गाल में समा गये। ये वे बेघर लोग थे जिनके पास अपना कोई घर नहीं था। यह घटना सरकार के खोखले दावों को आइना दिखाती है।

2011 की जनगणना के अनुसार, उस समय तक महानगरों और उपनगरों में बेघर लोगों की संख्या में बीस प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई थी। उस समय 17.73 लाख लोग तब बेघर थे। तब से इनकी संख्या लगातार बढ़ती गयी है। ये समाज के वे सबसे वंचित और गरीब लोग हैं जो सामाजिक और आर्थिक उत्पीड़न के कारण आज हाशिये पर पहुँच गये हैं। इनका कोई घर नहीं है। ये महानगरों और उपनगरों में अस्थायी झुग्गियाँ बनाकर रहने को मजबूर हैं। इनमें से बहुत से फुटपाथ और सड़कों के डिवाइडर पर खुले आसमान के नीचे सभी मौसमों में सोते हैं। हालत यह है कि दिल्ली, मुम्बई और लखनऊ जैसे महानगरों में हर चौथा या पाँचवा व्यक्ति आज बेघर है। इनमें से ज्यादातर लोग दलित और आदिवासी समाज से आते हैं। एक ओर जहाँ लगातार आर्थिक तंगी, रोजगार का अभाव, प्राकृतिक आपदाओं आदि के कारण इन्हें पलायन करने को मजबूर होना पड़ा है, वहीं दूसरी ओर दशकों से चली आ रही सरकारों की गरीब और मजदूर विरोधी नीतियों ने इन्हें इस हाल में लाकर खड़ा कर दिया है। आज इनका बहुत बड़ा हिस्सा इसी स्थिति में पैदा होने और ऐसी ही हालत में मरने को मजबूर है। इन बेघर लोगों में महिलाओं की स्थिति बेहद चिन्ताजनक है। सामाजिक असुरक्षा, मानसिक तथा शारीरिक उत्पीड़न महिलाओं के लिए आये दिन चिन्ता का विषय बने रहते हैं। यहाँ महिलाओं और बच्चों में कुपोषण एक बड़ी समस्या है।

बीते वर्ष कोरोना महामारी और देशव्यापी तालाबन्दी से जो आर्थिक तबाही हुई उसका सबसे अधिक दुष्प्रभाव देश की बहुतायत गरीब और मेहनतकश आवाम पर पड़ा। जहाँ देश के मुट्ठी भर उद्योगपतियों को राहत देने के लिए सरकारों ने अपना खजाना खोल दिया, वहीं जब बहुतायत अवाम की बात आयी तो सरकारों ने अपने हाथ खड़े कर दिये। इसका नतीजा यह हुआ कि सत्ताइस करोड़ लोग रोजी-रोटी के मोहताज हो गये और गरीबी रेखा से नीचे चले गये। यह सरकारों की जन विरोधी नीतियों की वजह से हुआ। समाज में तेजी से गरीबी बढ़ी। बेइन्तहा गरीबी और बीमारी ने किसी को घर का समान, तो किसी को अपना घर ही बेचने पर मजबूर किया। इस त्रासदी का सबसे खतरनाक प्रकोप इन्हीं बेघर लोगों ने सहा। तालाबन्दी में जो देशव्यापी कर्फ्यू जैसे हालात पैदा हुए उसने इनके लिए खाने-रहने का संकट पैदा कर दिया। ये भूख से मरने को मजबूर हैं। तालाबन्दी के तुरन्त बाद हुए सर्वे से पता चला कि दिल्ली के इन बेघर लोगों को लगातार तेरह दिन खिचड़ी ही खानी पड़ी। इसी समय वे हजारों छोटे बच्चे जो दूध पर निर्भर थे, उनका क्या हुआ होगा और उनका क्या हुआ होगा जो बुजुर्ग और बीमार थे? ये सवाल हमारे दिल और दिमाग को हिला देते हैं। लेकिन इस पर प्रधानमंत्री साहेब की संसद में जबान तक नहीं हिली।

यह शासक वर्ग के मानवद्रोही और इनसानियत विरोधी चरित्र को दिखाती है। आजादी के इतने बरस बाद भी करोड़ों लोग आज ऐसे आमनवीय हालात में रहने को मजबूर हैं। यहाँ इन लोगों के पास रोजगार का कोई स्थायी साधन नहीं है। पुरुष रिक्शा चलाने, फुटकर समान बेचने, ठेला आदि लगाने और महिलाएँ तथा बच्चे कूड़ा बीनने, उसे छाँटने और उसे अलग करने जैसा काम करते हैं। इस पर भी कमाई का बड़ा हिस्सा रिक्शे-ठेले का मालिक, बड़ा कबाड़ी आदि मार ले जाता है। स्थायी रोजगार और घर ना होने के चलते इनकी सामाजिक स्थिति बेहद खराब है। आये दिन इन्हें शारीरिक और मानसिक अपराध का शिकार होना पड़ता है। जहाँ पुरुषों को पुलिस द्वारा आपराधिक मामलों में फँसाया जाता है, वहीं महिलाओं को यौन हिंसा का सामना करना पड़ता है। आये दिन उनको उनके अस्थायी आवासों से प्रशासन द्वारा उजाड़ा जाता है। सामाजिक सुरक्षा और न्याय इनके लिए निरर्थक शब्द मात्र हैं। इनका न तो अपना कोई घर है और न ही कोई देश। अपने ही देश में ये शरणार्थी की तरह गुजर-बसर करने को मजबूर हैं।

इन बेघर लोगों के बारे में कोई भी राजनीतिक पार्टी बात तक नहीं करती, क्योंकि इनकी इस स्थिति की जिम्मेदार भी ये ही पार्टियाँ और इनकी गरीब विरोधी नीतियाँ हैं। यह सब इनकी ही करनी का नतीजा है। इन पार्टियों ने अपना ईमान-धर्म सब कुछ मुट्ठीभर धन्नासेठों को बेच दिया है। इन धन्नासेठों के राजनेताओं ने 'गरीबी हटाओ', 'हर गरीब को पन्द्रह-बीस लाख रुपये', 'गरीबों को घर' जैसे नारे खूब उछाले, लेकिन इतिहास में इनका नाम सबसे पतित, झूठे और मक्कार लोगों में शुमार किया जाएगा। अपने लाखों झूठ से ये इस सच्चाई पर पर्दा नहीं डाल सकते कि ये सब लुटेरे हैं। इनकी सनक और अय्यशी की कीमत देश का गरीब मेहनतकश, उनके बच्चे और बुजुर्ग अपनी जान देकर चुका रहे हैं। ये मुट्ठीभर लोग खून पीनेवाले जोंक हैं और इनकी खुराक मेहनत मजदूरी करने वालों का शोषण और उत्पीड़न है।

जब तक हमारे देश में मजदूर की मेहनत और उसके औजार बाजारू बने रहेंगे और इन पर चन्द पूँजीपतियों का कब्जा रहेगा, तब तक ये बदहाली और विपन्नता बदस्तूर जारी रहेगी और ये कहावत चरितार्थ होगी कि 'अमीर और अमीर होता जाएगा तथा गरीब और गरीब।' एक ओर बहुमंजिला इमारतें होंगी, तो दूसरी ओर करोडों लोगों का अपना कोई पता ठिकाना तक नहीं होगा।

-- अभिषेक तिवारी

कृषि शिक्षा और अनुसन्धान के बजट में 57 फीसदी की कटौती

फरवरी 2022 में सरकार ने कृषि शिक्षा और अनुसन्धान के बजट में 57 फीसदी की कमी कर दी है। इसका खुलासा कृषि पशुपालन और खाद्य प्रसंस्करण की संसदीय समिति की रिपोर्ट में हुआ। इसके लिए 2018-19 में अनुमानित बजट 618 करोड़ रुपये था। इसे संशोधित करके 525 करोड़ रुपये कर दिया गया। इसके बाद 2020-21 में अनुमानित बजट में ही कटौती कर इसे 480 करोड़ रुपये किया गया। इसमें भी संशोधन कर 319 करोड़ रुपये किया गया। 2020-21 की बजट कटौती में तो सरकार ने सारी हदें ही पार कर दी। कृषि शिक्षा और अनुसन्धान के लिए सरकार ने अनुमानित बजट मात्र 355 करोड़ रुपये रखा है। अब देखना यह होगा कि इसमें संशोधन कर कितना आवंटन होगा?

सरकार द्वारा कृषि शिक्षा और अनुसन्धान में लगातार कटौती करने के पीछे की मंशा साफ जाहिर है कि अब कृषि और अनुसन्धान पर निजी कम्पनियों और कॉर्पोरेट का ही नियंत्रण होगा। अभी तक कृषि विस्तार के लिए सरकार द्वारा जो शिक्षा और शोध के काम किये जाते थे अब वह नहीं होंगे। तमाम खाद, बीज, कृषि यंत्र और विभिन्न तरह की कृषि तकनीकों के लिए शिक्षा और शोध का काम कॉर्पोरेट के द्वारा होगा। जो भी खाद, बीज, उर्वरक आदि सरकारी नियंत्रण में थे जिसकी वजह से आम किसानों को सस्ती दरों पर उपलब्ध हो जाते थे, सरकार ने उसे खत्म करने की शुरुआत बहुत पहले कर दी थी, अब उनका सस्ती दरों पर मिलना और मुश्किल हो जायेगा। कॉर्पोरेट अपने मुनाफे को सुनिश्चित कर उनकी उपलब्धता कराएगा।

आज देश भर में कृषि शिक्षा और शोध के लिए 103 शोध एवं शिक्षण संस्थान, 74 कृषि विश्वविद्यालय और 721 कृषि विज्ञान केन्द्र हैं। संसदीय समिति का कहना है कि अभी तक जो बजट जारी होता था उसका 70 से 75 फीसदी वेतन और पेंशन पर खर्च हो जाता था। इसके बाद शेष 25 से 30 फीसदी बजट शोध और कृषि प्रसार की योजनाओं पर खर्च किया जाता था।

तीन कृषि कानूनों को पास कर सरकार कॉर्पोरेट की जो सेवा करना चाहती थी, आज वह इस बजट कटौती से सामने आ गयी है। जिस तरह से सरकार इन शिक्षण और शोध संस्थानों के बजट में कटौती कर रही है, उससे साफ है कि आने वाले समय में इनका संचालन निजी कॉर्पोरेट ही करेगा।

जासूसी सॉफ्टवेयर पेगासस की गुपचुप खरीद का खुला रहस्य

हाल ही में प्रकाशित न्यूयॉर्क टाइम्स की एक रिपोर्ट ने खुलासा किया है कि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने गुप्त तरीके से 300 करोड़ रुपये में इजराइल से पेगासस नामक जासूसी सॉफ्टवेयर खरीदा है। यह खरीद प्रधानमंत्री ने 2017 में अपनी इजराइल यात्रा के दौरान की थी। उस यात्रा के दौरान भारत और इजराइल के बीच 2 अरब डॉलर का रक्षा समझौता भी हुआ था। दरअसल, पेगासस सॉफ्टवेयर इजरायल की एक कम्पनी (एनएसओ) ने बनाया है। यह सॉफ्टवेयर एक साथ 50 से ज्यादा लोगों का मोबाइल डाटा कण्ट्रोल कर उसकी चैट, ईमेल, फोटो आदि की जानकारी लीक कर सकता है। इस सॉफ्टवेयर की मदद से फोन के कैमरा और ऑडियो को हैक करके फोन के आस-पास होने वाली सभी गतिविधियों को भी रिकॉर्ड किया जा सकता है। यह रिपोर्ट यूपी समेत पाँच राज्यों के चुनाव से ठीक पहले प्रकाशित की गयी थी। इसलिए विपक्षी पार्टियाँ बीजेपी पर हमलावर हो गयी हैं। लेकिन प्रधानमंत्री ने इन सभी आरोपों का अब तक कोई जवाब नहीं दिया है।

सवाल यह उठता है कि आखिर देश के प्रधानमंत्री को एक जासूसी सॉफ्टवेयर की क्या जरूरत आन पड़ी है? मोदी सरकार पर पहले भी कितनी ही बार जजों, वकीलों, विपक्षी नेताओं समेत पत्रकारों की जासूसी कराने के आरोप लग चुके हैं। 2019 में व्हाट्सएप ने भी इस बात की पुष्टि करते हुए कहा था कि भारतीय सरकार प्रभावशाली लोगों की जासूसी करा रही है। दरअसल बीजेपी ने सत्ता में आते ही एक तरफ तो सुप्रीम कोर्ट, चुनाव आयोग आदि स्वायत्त संस्थाओं को अपने नियंत्रण में लेने का काम शुरू कर दिया, वहीं दूसरी तरफ उनके खिलाफ बोलने वाले पत्रकारों और नौकरशाहों को दबाने का काम भी कर रही है। इसके लिए बीजेपी ने साम, दाम, दंड और भेद की नीति अपनायी है। अमित शाह का मुकदमा देख रहे जज लोया की रहस्यमय परिस्थिति में मौत से भाजपा के ऊपर कई सवाल उठे। योगी आदित्यनाथ ने यूपी का मुख्यमंत्री बनते ही अपने ऊपर लगी संगीन धाराओं को खत्म करवा दिया लेकिन न्यायपालिका से किसी भी तरह का कोई विरोध नहीं दिखा। यह केवल एक दो घटनाएँ नहीं है बल्कि बीजेपी के सत्ता में आते ही चाहे वह चुनाव में धाँधली का मामला हो या फिर झूठे केस में सामाजिक कार्यकर्ताओं को फँसाकर जेल भेजने का मामला हो, इसकी एक लम्बी फेरिस्त मौजूद है। जनता से बड़े-बड़े वादे करके बीजेपी आज हर मोर्चे पर फिसड्डी साबित हुई है। ऐसे में जासूसी सॉफ्टवेयर पेगासस का इस्तेमाल कर अपने ही देशवासियों की जासूसी कराने का आरोप भाजपा को महँगा पड़ सकता है। इसके लिए सुप्रीम कोर्ट ने भी कई बार सरकार को फटकार लगायी है, लेकिन बेहया सरकार के ऊपर कोई असर नहीं हुआ।

-- आकाश

मजदूरों की हालत

हमारे देश की सरकारों ने कोरोना वायरस का बहाना बनाकर श्रम कानूनों में बदलाव करके मजदूरों के अधिकारों पर जबरदस्त हमला किया है जिन्हें हासिल करने के लिए मजदूरों ने न जाने कितनी लड़ाइयाँ लड़ीं और कुर्बानियाँ दी थीं। श्रम कानूनों में बदलाव करके मजदूरों के सामने ऐसी स्थिति पैदा कर दी गयी है कि वे अपना संगठन न बना पायें। पूँजीपतियों को बहुत अच्छी तरह मालूम है कि बिना मजदूर संगठन के मजदूर अपने हक की लड़ाई नहीं लड़ सकते हैं। साथ ही काम के घंटों को 8 से बढ़ाकर 12 कर दिया गया है और न्यूनतम मजदूरी की भी कोई सीमा नहीं रखी गयी है। यहाँ तक कि मजदूरों को नौकरी से निकाल दिये जाने पर या मजदूरों की दूसरी समस्याओं की कोई सुनवाई नहीं होगी जिसके चलते कम्पनियाँ मजदूरों से मनमानी शर्तों पर काम करवा रही हैं।

देश की नवरत्न और महारत्न कही जाने वाली सरकारी कम्पनियों में भी मजदूरों की स्थायी भर्ती न करके ठेका प्रथा लागू की जा रही है जिसके खिलाफ कई सालों से मारुति के मजदूर लड़ाई लड़ रहे हैं। श्रम कानूनों को खत्म कर देने से मजदूरों के सामने जीवन-मरण की समस्या खड़ी हो गयी है। मजदूरों के लिए चुनौतियाँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं और सरकार, पुलिस प्रशासन और न्याय व्यवस्था पूरी तरह से पूँजीपतियों के साथ खड़ी नजर आ रही हैं। इसलिए आज मजदूरों को पहले से अधिक और व्यापक स्तर पर संगठित होकर धैर्य के साथ एक लम्बी लड़ाई लड़ने की जरूरत है।

पेगासस स्पायवेयरः जासूसी हमेशा दुश्मनों की करायी जाती है!

द वाशिगंटन पोस्ट और 16 मीडिया संस्थानों ने एक बड़ा खुलासा किया है-- जिसका नाम है पेगासस स्पायवेयर। जाँच में सामने आया है कि दुनियाभर से 50,000 मोबाइल नम्बरों की एक सूची निकली, इस सूची के कुछ नम्बरों की जासूसी की जा रही थी तथा नम्बरों की जासूसी की जानी थी। भारत में 300 से अधिक, जिनमें 40 से अधिक पत्रकार, उच्चतम न्यायलय के न्यायधीश, चुनाव आयुक्त, शिक्षाविदों, सत्ता पक्ष तथा विपक्ष के बड़े नेताओं की जासूसी की जा रही थी। लेकिन भारत संचार व तकनीकी मंत्री, अश्विनी वैष्णव ने लोकसभा में कहा कि इस लीक डेटा से जासूसी साबित नहीं होती, अवैध निगरानी, हमारे सिस्टम में सम्भव ही नहीं है, यह सरकार को बदनाम करने की एक साजिश है। जबकि खुद अश्विनी वैष्णव का नाम इस जासूसी सूची में है।

पेगासस ऐसा सॉफ्टवेयर है जो, आप क्या कर रहे हैं, किन लोगों से मिल रहे हैं, क्या बातचीत कर रहे हैं, आप किस समय क्या काम कर रहे हैं, आपकी हर एक गतिविधि की निगरानी रखता है। यहाँ तक की आप के सिस्टम में कुछ भी गैरकानूनी चीजें प्लान्ट कर सकता है।

इस जासूसी खुलासे के बाद पूरी दुनिया में हलचल मची हुई है। अमरीका ने एनएसओ को ब्लैक लिस्ट कर दिया। साउदी अरब, हंगरी, अल्जीरिया व फ्रांस ने भी इसकी जाँच के आदेश दे दिये है। एप्पल कम्पनी ने तो सेंधमारी के बाद एनएसओ कम्पनी पर मुकदमा ही दायर कर दिया। खुद इजरायल ने जाँच के लिए मंत्री स्तरीय दल का गठन किया है। पोलैंड की सरकार ने तो माना भी है कि हमने पेगासस खरीदा है, लेकिन यह बात मानने से मुकर गये कि उन्होंने इसका इस्तेमाल जासूसी करने के लिए किया था। जबकि पोलैंड के नेता करजिस्तोफ ब्रेजा के फोन को 33 बार हैक किया गया।

जहाँ एक ओर पूरी दुनिया की सरकारें इस मामले को लेकर गम्भीर है, कुछ मीडिया संस्थान, बुद्धिजीवी तथा विपक्ष लगातार सरकारों से इसे खरीदनें व इसके उपयोग को लेकर सवाल पूछ रहे है, वहीं भारत सरकार मुहँ में दही जमाकर बैठी है। सरकार की चुप्पी खुद उसे संदेह के घेरे में लाकर खड़ा कर देती है।

गौरतलब है कि एनएसओ कम्पनी यह जासूसी सॉफ्टवेयर सिर्फ सरकारों को बेचती है। सवाल यह है कि सरकारें ऐसा क्यों कर रही हैं? दरअसल इसका जवाब इस व्यवस्था के चरमराते ढाँचे में ही निहित है। पूरी दुनिया में रोजाना भुखमरी, बेरोजगारी, स्वास्थ्य संकट, शिक्षा संकट के नये-नये आँकड़ें सामने आ रहे हैं। बेरोजगारों की एक फौज इकट्ठी होती जा रही है। भुखमरी दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। स्वास्थ्य संकट लगातार बढ़ता जा रहा है, जिसकी सच्चाई हमने कोरोनाकाल में भी देखी है। बेरोजगारी का आलम तो यह है कि पिछले पाँच सालों में सिर्फ उत्तर प्रदेश में बेरोजगारी दर 6 प्रतिशत बढ़ी है। गोवा में 16 प्रतिशत बढ़ी है। सरकारें जहाँ अपने लोगों को रोजगार नहीं दे पा रही है, वहीं इतने महँगे-महँगे सॉफ्टवेयर के जरिये अपने देश के लोगों की निगरानी कर रही है। ऐसे में जनता का सरकारों के प्रति अविश्वास बढ़ता जा रहा है। आये दिन सरकारों के खिलाफ जनता का प्रदर्शन जोर पकड़ता जा रहा है। सरकार आन्दोलनों को खत्म करने और उनकी आवाज दबाने के लिए जनता पर निगरानी रख रही है और उन्हें फर्जी तरीके से फँसा रही है।

अब सवाल उठता है कि आखिर जासूसी किन लोगों की करायी जाती है? दरअसल जासूसी हमेशा दुशमनों की करायी जाती है। अभी तक जितने भी नम्बरों की जाँच हुई है, वे सभी संस्थाएँ या लोग इस व्यवस्था को चलाने वाले हैं। इससे साफ जाहिर है कि सरकारे अपने अलावा, यहाँ तक की अपनी बनायी हुई संस्थाओं को, अपने लोगों को दुश्मन समझती है। सरकारें नहीं चाहती कि कोई भी आवाज उनके खिलाफ उठे। यह मसला अब निजता अथवा लोकतंत्र से कहीं ज्यादा बड़ा है, लोकतंत्र अब जासूसी तंत्र में तब्दील हो गया है क्योंकि लोकतंत्र अब तानाशाही की ओर बढ़ रहा है। ऐसी कोई भी संस्था नहीं बची हैं जो इन पर लगाम लगा सके। पूरा राज्य लम्पट हो चुका है। सवाल उठाने वालों को अपना दुश्मन समझता है, उन पर निगरानी रखता है, उन्हें गैर कानूनी तरीकों से फँसाता है। अब मसला सिर्फ लोकतंत्र को बचाने का नहीं है, बल्कि इस लम्पट हो चुकी व्यवस्था को बदलने का है।

-- जोनिश कुमार

10 साल बाद मारुति के मजदूर नेताओं की जमानत

लगभग 10 साल के लगातार संघर्षों के बाद कोर्ट ने मानेसर के मारुति सुजुकी विवाद में उम्र कैद की सजा काट रहे 13 में से अधिकांश मजदूर नेताओं को जमानत दे दी है। कम्पनी ने 2006 में अपना नया प्लांट मानेसर में लगाया और उसमें 23 साल से कम आयु के मजदूरों की ही भर्ती की जिससे कम्पनी का उत्पादन अधिक से अधिक हो। इस प्लांट में आधुनिक मशीनें और रोबोट का इस्तेमाल किया गया और जिन मजदूरों से मशीनों के साथ 1 सेकंड भी तालमेल बैठाने में चूक हो जाती, उन्हें काम से निकाल दिया जाता था। इस प्लांट में कुशल मजदूरों को भी 3 साल की ट्रेनिंग पर रखा गया था और बहुत कम वेतन दिया जाता था। यहाँ तक कि वे चाय या खाने के समय के अलावा न टॉयलेट जा सकते थे और न ही पानी पी सकते थे। इन सब परेशानियों को देखते हुए मजदूरों ने यूनियन बनाने की कोशिश शुरू की, ताकि उन्हें बेहतर सुविधाएँ मिल सके, लेकिन कम्पनी ने मजदूरों से सादे कागज पर साइन करवा कर उन्हें ब्लैकमेल करना शुरू कर दिया। मजदूरों ने इसके विरोध में प्लांट में ही बैठकर हड़ताल शुरू कर दी। आगामी वर्षों में मजदूरों ने हड़ताल और विरोध प्रदर्शन के दम पर यूनियन बना ली। इसके बाद यूनियन ने ठेका प्रथा को खत्म करने और समान काम का समान वेतन लागू करने की मांग उठानी शुरू कर दी जिसे कम्पनी ने नामंजूर कर दिया और यूनियन को खत्म करने के लिए तरह-तरह के हथकण्डे अपनाने लगी।

कम्पनी ने 18 जुलाई 2012 को षड्यंत्र रचकर प्लांट के अन्दर झगड़ा करवाया जिसमें कम्पनी के एक मैनेजर की मौत हो गयी। इस घटना के बाद यूनियन के नेतृत्वकारी मजदूरों सहित 148 मजदूरों को जेल में डाल दिया गया और लगभग ढाई हजार मजदूरों को बर्खास्त कर दिया गया। ये मजदूर 4 सालों तक बिना किसी जमानत के जेल की सजा काटते रहे और बर्खास्त मजदूर पुलिसिया दमन के शिकार होते रहे, लेकिन प्रोविजनल वर्किंग कमेटी बनाकर मजदूरों ने आन्दोलन जारी रखा। मजदूर अपने साथियों को रिहा करवाने के लिए लगातार संघर्ष करते रहे, लेकिन 4 साल तक किसी भी मजदूर की जमानत नहीं हुई। एक तरफ कम्पनी और सरकार का गठजोड़ मजदूरों पर कहर ढा रहा था और दूसरी तरफ जेल में बन्द मजदूरों को न्यायालय से जमानत नहीं मिल रही थी। चंडीगढ़ हाई कोर्ट ने जमानत देने से साफ इनकार करते हुए कहा था कि मारुति मजदूरों को जमानत देने से विदेशी निवेश प्रभावित होगा। मार्च 2017 में गुड़गाँव कोर्ट ने मैनेजर की हत्या के आरोप में 13 मजदूरों को उम्र कैद की सजा सुना दी। जिस मैनेजर ने यूनियन बनवाने में मजदूरों की मदद की थी, उसकी षड्यंत्रबद्ध तरीके से हत्या करवाकर इसका आरोप मजदूरों के सिर पर मढ़ दिया गया। देश की सर्वोच्च अदालत के दो सदस्य पीठ के जजों ने भी कोई दलील सुने बिना ही मजदूरों को अपराधी घोषित करते हुए जमानत याचिका खारिज कर दी। इन सभी घटनाओं से मजदूरों को अब यह बात समझ में आ गयी थी कि मुनाफे पर टिकी पूँजीवादी व्यवस्था में सरकार मजदूरों की नहीं, बल्कि पूँजीपतियों की होती है।

बर्बर दमन और अपने साथियों को जेल में सड़ता देखकर भी मजदूर पस्त हिम्मत नहीं हुए। वे लगातार संघर्ष करते रहे, तब जाकर लगभग 10 साल बाद अधिकांश मजदूरों को जमानत मिली जबकि उम्र कैद की सजा काटते हुए दो मजदूरों की स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों से मौत हो गयी। अभी कुछ मजदूरों को जमानत नहीं मिली है। मारुति मजदूरों के साथ ही देश भर की अलग-अलग कम्पनियों के मजदूर अपने हक की लड़ाई लड़ रहे हैं और पुलिस के लाठी-डंडे खा रहे हैं। उनका संघर्ष अभी जारी है।

-- अजहर

पेज 34 का शेष...

अडानी जैसे लोगों के बारे में बताया जा रहा है कि इन धन्नासेठों के लिए नया साल बहुत ही बेहतरीन साबित हो रहा है। ये बड़े-बड़े फार्म हाउस बना रहे है, अन्तरिक्ष में फोटोसूट कर रहे हैं, अंटीला बना रहे हैं, पाँच सितारा, सात सितारा होटल और न जाने कितने अय्यासियों के अड्डे अपने लिए बनवाये है। वहीं अगर आम जनता की बात की जाए तो लोगों की आमदनी में लगातार गिरावट आयी है। वे दो जून की रोटी तक को मौहताज हो गये है। असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की भारी आबादी ऐसी है जिन्हें सामान्य बीमारियो का इलाज तक नहीं मिल पा रहा है। कोरोना के बाद से अब तक बच्चों की पढ़ाई शुरू नहीं हुई है।

यह विरोधाभास साफ-साफ दिखाता है कि किस तरह सरकारें देशी-विदेशी धन्नासेठो के साथ मिलकर गरीब जनता को लूटने और कुचलने में कोई भी कोर कसर नहीं छोड़ रही हैं। ये आपदाओं को अवसर में बदलना चाहते है ताकि ये देश के गरीब गुर्बा वर्ग के लोगों की हड्डियों तक का फास्फोरस बनाकर विश्व बाज़ार में बेचे और उससे मुनाफा कमाकर अपनी तिजोरियाँ भरें।

-- उत्कर्ष

विश्व असमानता रिपोर्ट के मायने

बीते दिसम्बर माह में विश्व असमानता रिपोर्ट (डब्लूआईआर) 2022 आयी। जिसने बताया कि दुनिया भर में अमीरी और गरीबी के बीच खाई तेजी से बढ़ी है। वहीं भारत में इस खाई का अन्तराल हिन्द महासागर और हिमालय पर्वत के अन्तर जैसा हो गया है। आँकड़े बताते हैं कि जहाँ एक ओर धनकुबेरो की संख्या बढ़ी है वहीं करोड़ों गरीब लोग रोटी तक को मोहताज हो गये हैं। यह रिपोर्ट देश के शासकों की राजनीतिक पार्टियों के झूठ और फरेब को बेनकाब करती है और बताती है कि इनकी 5 ट्रिलियन की अर्थव्यवस्था की कीमत मेहनत मजदूरी करने वाली जनता को अपनी जान देकर चुकनी पड़ रही है। इनकी नीतियों की वजह से बीते सालों में 27 करोड़ लोग गरीबी रेखा से नीचे पहुँच गये हैं। राष्ट्रीय आय में जहाँ एक तरफ 10 प्रतिशत अमीरों की हिस्सेदारी में 57 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई और इसमें भी सबसे ऊपरी 1 प्रतिशत ने इसमें 22 प्रतिशत की हिस्सेदारी कब्जाई है, वहीं दूसरी तरफ 50 फीसदी जनता की आर्थिक हैसियत गिर गयी है। उनकी राष्ट्रीय आय में हिस्सेदारी घटकर मात्र 13 प्रतिशत रह गयी है। यानी आवाम तेजी से गरीब हुई है। हालत यह है कि भारत दुनिया के सबसे असमान देशों की सूची में शामिल हो गया है।

1990 तक दुनिया के एक प्रतिशत अमीर विश्व की एक तिहाई सम्पत्ति पर काबिज थे। यह आर्थिक असमानता निरंतर बढ़ती गयी। इस परिघटना के मुख्य कारण हैं-- 1991 में दो ध्रुवीय दुनिया का पतन और अमरीका की चौधराहट में एक नयी विश्व व्यवस्था का बनना, जिसके तहत सभी उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं को इस नयी विश्व व्यवस्था का हिस्सा बनने पर मजबूर होना पड़ा। दुनिया के लगभग सभी देशों ने अमरीकी चौधराहट को मान्यता देने वाले वाशिंगटन समझौता, डंकल प्रस्ताव आदि साम्राज्यवादी लूट के दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किये। इसका मुख्य उद्देश्य मुट्ठी भर धन्ना सेठो की सम्पत्ति में अकूत वृद्धि करना था। साम्राज्यवादी देशों और पूँजीपतियों की सम्पत्ति लगातार बढ़ती गयी और समस्त दुनिया में गरीबी और भुखमरी पैर पसारती रही। ऐसा ही कमोबेश भारतीय अर्थव्यवस्था में भी हुआ।

1990 में वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के नाम पर भारत का बाजार वैश्विक साम्राज्यवादी दैत्याकार कम्पनियों के लिए खोल दिया गया। निजीकरण के जरिये सरकारों ने जहाँ सार्वजनिक उपक्रमों को कौड़ी के भाव उद्योगपतियों को देने का काम किया, वहीं विशेष आर्थिक क्षेत्र, नये श्रम कानून, भूमि अधिग्रहण कानून आदि के जरिये उद्योगपतियों को जनता का शोषण करने और उसे लूटने के लिए लिए 'फ्री हैंड' दे दिया। इसने मुट्ठी भर लोगों के हाथों सम्पत्ति संकेंद्रित की और बहुतायत जनता गरीबी और बदहाली की ओर धकेल दी गयी। वैश्वीकरण और निजीकरण से तेजी से बेरोजगारी बढ़ी। सरकारों ने जन कल्याणकारी कामों से अपने हाथ खींच लिये। इसने समाज में बढ़ती गरीबी के लिए कोढ़ में खाज का काम किया।

विश्व की मेहनतकश जनता के अधिकारों पर जो साम्राज्यवादी लुटेरों ने हमला किया, उसे ही इन्होंने पूँजीवाद के स्वर्णिम दौर के रूप में प्रचारित किया। 1990 के बाद जो लूट की नयी विश्व व्यवस्था बनायी गयी थी, उसे 2008 की वैश्विक आर्थिक मन्दी ने धर दबोचा। इससे विश्व अर्थव्यवस्था की इमारत ताश के पत्तों की तरह बिखरने लगी। अरबों डॉलर की सम्पत्ति धुएँ की तरह उड़ गयी। सैकड़ों उद्योग, कम्पनियाँ और व्यापार तबाह हो गये, करोड़ों लोग बेरोजगार हो गये। साम्राज्यवादियों का स्वर्णिम दौर कभी न खत्म होने वाले आर्थिक संकट में फँस गया।

2014 के बाद बनी 'मोदी सरकार ने 'अच्छे दिन' और 'भ्रष्टाचार मुक्त सरकार' के नारे नाम पर नोटबन्दी और जीएसटी जैसे कानून बनाये और नये श्रम कानूनों के जरिये मेहनत मजदूरी करने वाली जनता के अधिकारों पर हमला किया। इसने जहाँ छोटे और मझोले उद्योगों की कमर तोड़ दी, वहीं लाखों लोगों को अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा। 2020 में वैश्विक कोरोना महामारी और देशव्यापी तालाबन्दी, रोज कमाने खाने वाले मजदूरों पर पहाड़ की तरह टूटी। इन सब ने समाज में व्याप्त गरीबी को स्वतंत्र भारत के इतिहास में उच्चतम स्तर पर पहुँचा दिया।

आज हालत यह है कि हर 4 सेकंड में एक व्यक्ति की असमय मौत हो रही है और हर 26 घंटे में मजदूरों का शोषण कर एक अरबपति पैदा हो रहा है। हम जानते है कि अगर किसी परिवार में कमाने वाले की मौत हो जाए तो उस परिवार पर क्या बीतती है? अगर हर परिवार में एक कमानेवाले के पीछे तीन आश्रित माने जाये तो ऊपर के आँकड़े के हिसाब से 93,600 की जिन्दगी को निगल कर एक अरबपति पैदा हो रहा है। एक तरफ एलन मस्क, मुकेश अम्बानी, बिल गेट्स, जेफ बेजोस, गौतम

शेष पेज 33 पर...

कोरोना वैक्सीन : महामारी के समय मुनाफे का जैकपॉट

15 फरवरी 2022 को 'मेडिकल प्रेस' की रिपोर्ट के अनुसार, अक्टूबर 2021 तक बनायी गयी कुल वैक्सीन का सिर्फ 0.7 प्रतिशत ही गरीब और कम आय वाले देश के लोगों को दिया गया। दूसरी तरफ, ज्यादा आय वाले देशों को इसका 47 गुना दिया गया। यहाँ ध्यान देने वाली बात है कि वैक्सीन को निजी मालिकाने वाली कम्पनियों ने बनाया। इस तथ्य से एक बात साफ-साफ समझी जा सकती है कि मौत के सौदागरों के सामने गरीब और अमीर की जान की कीमत अलग-अलग है।

सरकारों का रवैया

अमरीकी राष्ट्रपति ने पेटेण्ट में छूट की बात को मीडिया के सामने कहा और वाह-वाही लूटी। उन्होंने इसे लागू करने के लिए अभी तक कोई भी ठोस कदम नहीं उठाया। युरोपियन यूनियन ने पेटेण्ट में छूट की बात को सिरे से नकार दिया। भारत ने भी वैक्सीन के पेटेण्ट में छूट नहीं दी।

पेटेण्ट में छूट का मतलब है कि वैक्सीन बनाने और उसे वितरित करने की छूट। यह किसी एक कम्पनी के एकाधिकार को खत्म करता है। ऐसा करने से पहले की तुलना में ज्यादा वैक्सीन बनायी जा सकेंगी और जरूरतमन्द बीमार को लगायी जा सकेंगी। जब पूरी दुनिया किसी महामारी से त्राही-त्राही कर रही हो तो उससे जल्द से जल्द बाहर निकालने की जिम्मेदारी सरकारों की होती है। ऐसी स्थिति में पेटेण्ट को खत्म करना एक जरूरी कदम है।

कोरोना वैक्सीन को सिर्फ निजी अनुभव से बनाया गया हो, ऐसा नहीं है। उदाहरण के लिए भारत में कोविशील्ड नाम की वैक्सीन को ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय और स्वीडेन की कम्पनी एस्ट्राजेनेका से लाइसेन्स पर लिया गया है। कोवैक्सीन को नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ वायरोलॉजी, पुणे में विकसित किया गया था जो कि आईसीएमआर के अधीन है। ये दोनों सार्वजनिक क्षेत्र के विश्वविद्यालय हैं। ये करोड़ों नागरिकों की मेहनत से कमाये हुए पैसों से चलते हैं। इसमें मेहनतकश वर्ग बहुसंख्या में शामिल है। पूरी दुनिया के लोगों से अर्जित सामूहिक ज्ञान और विज्ञान से नये-नये आविष्कार और खोजें होती हैं। वहीं वैक्सीन के परीक्षण में हजारों लोगों के जान को जोखिम में डाला जाता है। ऐसे में बहुसंख्य लोगों की मदद से तैयार वैक्सीन को चन्द मुनाफाखोरों को सौंप देना पूरी मानवता के खिलाफ है।

एक-दो मामलों को छोड़ दें, तो वैक्सीन बनाने वाली का काम अलग-अलग देशों के सार्वजनिक क्षेत्र के विश्वविद्यालयों ने ही किया है।

कोवैक्स (सीओवीएएक्स), निजी कम्पनियाँ और हुक्मरान

वैक्सीन को पूरी दुनिया में वितरित करनेवाला 'कोवैक्स' एक ऐसा एक संगठन है जिसे जीएवीआई, सीईपीआई, विश्व स्वास्थ्य संगठन(डबल्यूएचओ), यूनिसेफ(यूएनआईसीईएफ), निजी संस्थाओं, संगठनों और अलग-अलग सरकारों ने मिलाकर बनाया है। यह निजी कम्पनियों और सरकारों द्वारा बनायी गयी कुल वैक्सीन की पहले से तय और निश्चित मात्रा को दूसरे गरीब और वैक्सीन की कमी वाले देशों में भेजने की जानकारी देता है। कोवैक्स के बार-बार जानकारी देने और माँगने के बावजूद भी फाएजर, मोडेरना और जॉन्सन एंड जॉन्सन सहित अन्य बड़ी कम्पनियों ने पहले से निर्धारित वैक्सीन का बहुत कम भाग (0 से 40 प्रतिशत) ही दिया। ऐसे में सरकारों का मुनाफाखोर (मौत के सौदागर कहना अनुचित नहीं होगा) कम्पनियों के खिलाफ कोई कार्रवाई न करना कई सवाल छोड़ता है।

दुनिया विश्व युद्ध, महामारी, मन्दियों और आपदाओं का सामना करते हुए और सबक लेते हुए आगे बढ़ती रही है। राष्ट्रीय या अन्तरराष्ट्रीय आपातकाल में कुछ सरकारों ने निजी मालिकाने की खस्ताहाल कम्पनियों को अपने अधीन लेकर उसमें फिर से जान डाली है। कभी-कभी लोगों की भलाई के लिए भी ऐसा किया गया है। ऐसे में जब पूरी दुनिया चिकित्सा के आपातकाल की स्थिति में हो तो ऐसा करना जरूरी हो जाता है। कोरोना महामारी में ऐसा करके लाखों लोगों की जान बचायी जा सकती थी। अफसोस, ऐसा नहीं हुआ। आखिर देशों की सरकारों ने ऐसा क्यों नहीं किया? आखिर, उन्हें ऐसा करने से कौन रोकता है?

कीमत कौन चुकाता है? किस कीमत पर?

जुलाई 2021 के 'पीपल्स वैक्सीन अलायन्स' ने एक विश्लेषण में बताया कि फाएजर/ बायोएनटेक और मोडेरना ने अमरीकी सरकार से और यूरोपियन यूनियन के देशों से वैक्सीन की लागत से क्रमशः 41 अरब डॉलर और 31 अरब यूरो ज्यादा

वसूले। यह वहाँ के लोगों की सामूहिक जमा पूँजी थी। जिस पर इन दैत्याकार कम्पनियों ने अप्रत्यक्ष रूप से डाका डाला। बहरहाल यही हालत भारत की भी है। यहाँ भी निजी कम्पनियों ने लागत से ज्यादा पैसे वसूले। यहाँ एक बात गौरतलब है कि पहले सार्वजनिक विश्वविद्यालयों और सरकारी संस्थाओं ने वैक्सीन को बनाकर और परीक्षण करके इन निजी कम्पनियों को दिया। और फिर इन्हें मुनाफे के लिए निरंकुश छोड़ दिया। दवाओं का उत्पादन सरकार के नियंत्रण में होने से वैक्सीन किफायती होती, और जनता की गाढ़ी कमाई बर्बाद न होती। लोगों के जरूरत के हिसाब से वैक्सीन के वितरण की सम्भावना बढ़ जाती। ऑक्सफैम, अमरीका की रिपोर्ट के अनुसार 18 दिसम्बर 2021 तक सिर्फ अमरीका में मारे गये(लगभग आठ लाख) लोगों की संख्या, द्वितीय विश्वयुद्ध (1939-1945) में मारे गये सैनिकों की संख्या (लगभग चार लाख सात हजार) का लगभग दुगुना है।

निजी कम्पनियों का मुनाफा

फाईजर कम्पनी ने अनुमान लगाया कि 2022 में कम्पनी का राजस्व 98 से 102 अरब डॉलर तक रहेगा। यह इस कम्पनी के 173 साल के इतिहास में सबसे ज्यादा है। 2021 में फाएज़र/ बायोएनटेक ने 36.7 अरब डॉलर मुनाफा कमाया। यह किसी भी कम्पनी का वैक्सीन से कमाया गया अब तक का सबसे ज्यादा मुनाफा है। फाएजर का 2021 का कुल राजस्व, भारत के इस बार के स्वास्थ्य बजट का सात गुना है। ऐसा ही हाल भारत में कोविशील्ड बनाने वाली कम्पनी के मालिक पूनावाला का है जो भारत के पाँचवे सबसे अमीर व्यक्ति बन गये हैं।

न्यूजक्लिक की एक गणना के अनुसार प्रति व्यक्ति आय के हिसाब से 50 सबसे गरीब देश- जहाँ पूरी दुनिया की कुल आबादी का 20.6 प्रतिशत लोग रहते हैं। उन्हें पूरी दुनिया में बनाये गये कुल वैक्सीन का सिर्फ 7.2 प्रतिशत ही मिला। मतलब इन देशों की पूरी आबादी के सिर्फ एक तिहाई हिस्से को ही वैक्सीन मिल सकी।

ग्लोबल कमीशन फॉर पोस्ट पेंडेमिक पॉलिसी के अनुमान के अनुसार यूरोप और एशिया के 80 प्रतिशत लोगों को मार्च 2022 तक, उत्तरी अमरीका के 80 प्रतिशत लोगों को मई 2022 तक पूरी तरह वैक्सीन लग जाएगी। वैक्सीनेशन की मौजूदा रफ्तार से अफ्रीका के 80 प्रतिशत लोगों को अप्रैल 2025 तक वैक्सीन लग पाएगी।

कोरोना महामारी में एक तरफ मेहनतकश रोटी-रोटी के लिए मोहताज रहा तो दूसरी तरफ चन्द निजी मालिकाने वाली कम्पनियों ने दिन दूना और रात चौगुना मुनाफा कमाया।

-- आशुतोष दुबे

पेज 37 का शेष...

इतिहास में उनकी चारित्रिक विशेषताओं के चलते अलग-अलग नाम भी दिये गये हैं। जब पूँजीपतियों पर टैक्स घटाए गये तो उसे ड्रीम बजट कहा गया। तालिका में देखा जासकता है। इस साल के बजट को यूनियन बजट कहा गया है।

1973 का 'काला बजट' 550 करोड़ घाटे का बजट था। 1991 का 'उदारीकरण बजट' विदेशी पूँजी का स्वागत किया गया था। 1997 का 'ड्रीम बजट' कॉर्पोरेट टैक्सों को घटाकर कम किया गया था।

2000 का मिलेनियम बजट आईटी सेक्टर को बढ़ावा देने के लिए था। 2002 का रोल बैक बजट विपक्ष के दवाब में कई प्रावधान वापिस लिये जाने का बजट था। 2022 का यूनियन बजट रही सही सम्पत्ति पूँजीपतियों को देने की योजनाओं से भरपूर है।

लब्बोलुआब यह कि 2022 का युनियन बजट भी हर बार की तरह पूँजीपतियों की झोली भरने के लिए लाया गया है। बहुतायत आबादी के हिस्से में आ रही है-- बेरोजगारी, भुखमरी, इलाज के लिए लम्बी लाइन, महँगी रसोई गैस, महँगा पेट्रोल, महँगी शिक्षा, महँगा इलाज। जिन्दगी के लिए जरूरी चीजें जनता की पहुँच से दूर होंगी। सरकारी सम्पतियाँ बिकेंगी, क्रिप्टो करेंसी रफ्तार पकड़ेगी, डिजिटलीकरण अर्थव्यवस्था को राहु-केतु की तरह निगल लेगा। एक तरफ मेहनतकशों को मूलभूत चीजों के लिए संघर्ष में अपनी सारी ताकत खर्च करनी होगी दूसरी तरफ अम्बानी-अडानी विकास के नये कीर्तिमान स्थापित करेंगे।

-- राजेश कुमार

कोई उम्मीद दूर तक नजर नहीं आती
फिर भी जीना किसी से प्यार हो जैसे

कैसे समझाऊँ ये पतझर है दिले नादाँ
जिद है इसको भी जीएँगे बहार हो जैसे

-- पंकज चतुर्वेदी

जनविरोधी यूनियन बजट 2022

आज देश में महँगाई, भुखमरी और बेरोजगारी सबसे बड़ी समस्या बन गयी हैं। करोड़ों की संख्या में काम करने वाले हाथ खाली हैं। नोटबंदी और लॉक डाउन की दोहरी मार ने मजदूर वर्ग की कमर तोड़ दी है। ऐसे में बजट का बड़ा हिस्सा देश में नये रोजगार पैदा करने के लिए होना चाहिए था। लेकिन दुर्भाग्य, ऐसा नहीं है। इस बजट से भी हर बार की तरह बड़े पूँजीपति और उद्योगपति खुश हैं। इस बार भी मलाई उनके हाथ लगी है। यहाँ पूँजीपतियों के संगठन फिक्की के अध्यक्ष संजीव मेहता की बजट पर आयी टिप्पणी गौर करने लायक है, "हम वित्तमंत्री को दूरदर्शी, विकासोन्मुखी और विकास के संचालकों को लम्बे समय तक मजबूती देने वाला बजट पेश करने के लिए बधाई देते हैं।" उधर मोदीकाल में रॉकेट की रफ्तार से अमीर बनने वाले अडानी ने भी वित्तमंत्री सीतारमण को धन्यवाद भेजा और बजट की तारीफ में कहा, "जब दुनिया महामारी से उबर रही है, भारत का बजट बहुत साहसिक है, और घरेलू नयी तकनीक को बढ़ावा देने वाला है। यह हमें हर मामले में आत्मनिर्भरता की ओर लेकर जाएगा।"

पूँजीपतियों में निजीकरण को लेकर उत्साह है। जिस तरह सरकार ने एयर इंडिया और नीलांचल इस्पात लिमिटेड को बेचने में कमाल की फुर्ती और दिलदारी दिखायी है उससे पूँजीपतियों का सरकार की निजीकरण नीति पर भरोसा बढ़ा है। पिछले बजट में सरकार ने 1.75 लाख करोड़ की सरकारी सम्पत्तियाँ बेचने का लक्ष्य रखा था। लेकिन वह बमुश्किल लक्ष्य का 6 फीसदी ही बेच पायी। अभी एलआईसी को बेचने की जोरों से तैयारी चल रही है, अगर इस वित्त वर्ष के अन्त तक वह बिक जाये तो सरकार के लक्ष्य में कुछ बढ़ोत्तरी हो सकती है। लेकिन उसकी सारी सम्पत्तियों का मूल्यांकन करने में ही विशेषज्ञों के पसीने छूट रहे हैं। बुरे से बुरे आकलन में भी एल आई सी की बिक्री से सरकार को 50-60 हजार करोड़ मिल जाएँगे। पिछले कुछ सालों से सरकारी सम्पत्तियों की बिक्री कम होने के चलते इस बजट में बिक्री लक्ष्य को पिछले साल से एक तिहाई कर दिया गया है यानी सिर्फ 65 हजार करोड़।

जिस बजट से पूँजीपतियों के खेमे में खुशी की लहर दौड़ रही हो, वही बजट किसान-मजदूर के लिए सही नहीं हो सकता। इस साल भी किसान-मजदूर की कमाई का बड़ा हिस्सा बड़े पूँजीपतियों को मिलने वाला है। एक तरफ कुछ और नये करोड़पति पैदा होंगे दूसरी तरफ गरीबी रेखा से नीचे जीने वालों की संख्या भी बढ़ेगी। अमीर-गरीब की खाई और बढ़ेगी।

पर्यावरण सम्बन्धी शिक्षा और जागरुक अभियानों के लिए भी बजट में कटौती की गयी है। खैर, जब 600 किलोमीटर लम्बे गंगा एक्सप्रेस वे के लिए दो लाख पेड़ काटने की अनुमति दी गयी हो तो पर्यावरण शिक्षा का कोई मतलब नहीं रह गया है।

कोरोना काल में स्वास्थ्य विभाग इंफ्रास्ट्रक्चर और स्वास्थ्य कर्मियों की कमी से जूझता रहा। इस कमी की कीमत पूरे देश की जनता ने अपनों को खोकर चुकायी। अभी भी महामारी चल रही है फिर भी सरकार ने स्वास्थ्य विभाग पर खर्च में कोई बढ़ोत्तरी नहीं की है। यह देश के लोगों को महामारी में बेसहारा छोड़ने का वैसा ही रवैया है जैसा सरकार पिछले दो साल से महामारी के दौरान अपनाती रही है।

साल 2016 से 2019 में "बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ" के लिए निर्धारित बजट का 80 फीसद हिस्सा केंद्र सरकार ने मीडिया पर खर्च किया। मतलब काम हो न हो, ढोल बजता रहे।

इस बार भी बजट में नई नौकरी के लिए कोई प्रावधान नहीं है। पाँच ट्रिलियन की अर्थव्यवस्था अभी भी एक सपना है। हर साल दो करोड़ नौकरी और पाँच ट्रिलियन की अर्थव्यवस्था का ढोल पीटने वाले आज धार्मिक मुद्दों पर एड़ियाँ रगड़ रहे हैं।

"बजट" हर किसी के लिए जैसे-उम्मीद की एक किरण होता है। पर यह किरण कभी धरती को नहीं छू पाती। चाय के खोखे पर लोग झुण्ड बनाकर बजट सुनते हैं और चर्चा करते हैं। गाँव के चौराहे पर लोग इकट्ठे होकर बजट सुनते हैं। मजदूर उसमें अपने लिए कुछ खोज लेना चाहते हैं, किसान अपने लिए कोई राहत की खबर सुनना चाहते हैं। नौकरीपेशा में लगे लोग टैक्स और महँगाई के कम होने की उम्मीद करते हैं।

गरीब और अमीर के बीच खाई हर दिन बढ़ रही है। हर दिन नये अमीर पैदा हो रहे हैं तो गरीबों की तादाद भी उसी अनुपात में बढ़ रही है। उदाहरण के लिए ऑक्सफैम की रिपोर्ट के अनुसार पिछले बीस सालों में सौ से ज्यादा नये अरबपति पैदा हुए। दूसरी तरफ सिर्फ इलाज के खर्च से 6.30 करोड़ लोग गरीबी रेखा से नीचे चले गये। इस विरोधभास का हल किसी बजट घोषणा में नहीं होता। हर साल बजट घोषित होता है, लेकिन कुछेक को

शेष पेज 36 पर...

उत्तर प्रदेश में मीडिया की घेराबन्दी

(पत्रकारों पर हमले के बारे में 'काज' समिति की रिपोर्ट)

पत्रकारों पर हमले के विरुद्ध समिति (काज) ने उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव के लिए पहले चरण के मतदान की पूर्व संध्या पर बुधवार को चौंकाने वाले आँकड़े जारी किये। समिति की रिपोर्ट 'मीडिया की घेराबन्दी' के अनुसार प्रदेश में पिछले पाँच साल में पत्रकारों पर हमले के कुल 138 मामले दर्ज किये गये जिनमें पचहत्तर फीसदी से ज्यादा मामले 2020 और 2021 के दौरान कोरोनाकाल में हुए।

समिति के मुताबिक 2017 से लेकर जनवरी 2022 के बीच उत्तर प्रदेश में कुल 12 पत्रकारों की हत्या हुई। ये मामले वास्तविक संख्या से काफी कम हो सकते हैं। इनमें भी जो मामले जमीनी स्तर पर जाँचें जा सके हैं उन्हीं का विवरण रिपोर्ट में दर्ज है। जिनके विवरण दर्ज नहीं हैं उनको रिपोर्ट में जोड़े जाने का आधार मीडिया और सोशल मीडिया में आयी सूचनाएँ हैं।

सबसे ज्यादा हमले राज्य और प्रशासन की ओर से किये गये हैं। ये हमले कानूनी नोटिस, एफआइआर, गिरफ्तारी, हिरासत, जासूसी, धमकी और हिंसा के रूप में सामने आये हैं।

अकेले 2020 में कुल सात पत्रकार राज्य में मारे गये-- राकेश सिंह, सूरज पांडे, उदय पासवान, रतन सिंह, विक्रम जोशी, फराज असलम और शुभम मणि त्रिपाठी। राकेश सिंह का केस कई जगह राकेश सिंह 'निर्भीक' के नाम से भी रिपोर्ट हुआ है। बलरामपुर में दबंगों ने घर में आग लगाकर उन्हें मार डाला। रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स की पड़ताल बताती है कि भ्रष्टाचार को उजागर करने के चलते उनकी जान ली गयी। राकेश सिंह 'राष्ट्रीय स्वरूप' अखबार से जुड़े थे। उन्नाव के शुभम मणि त्रिपाठी भी रेत माफिया के खिलाफ लिख रहे थे और उन्हें धमकियाँ मिली थीं। उन्होंने पुलिस सुरक्षा की गुहार भी लगायी थी लेकिन उन्हें गोली मार दी गयी। गाजियाबाद में पत्रकार विक्रम जोशी को भी दिनदहाड़े गोली मारी गयी। इसी साल बलिया के फेफना में टीवी पत्रकार रतन सिंह को भी गोली मारी गयी। सोनभद्र के बरवाडीह गाँव में दबंगों ने पत्रकार उदय पासवान और उनकी पत्नी की पीट-पीटकर हत्या कर दी। उन्नाव में अंग्रेजी के पत्रकार सूरज पांडे की लाश रेल की पटरी पर संदिग्ध परिस्थितियों में बरामद हुई थी। पुलिस ने इसे खुदकुशी बताया लेकिन परिवार ने हत्या बताते हुए एक महिला सब-इंस्पेक्टर और एक पुरुष कांस्टेबल पर आरोप लगाया, जिसके बाद उनकी गिरफ्तारी हुई। कौशाम्बी में फराज असलम की हत्या 7 अक्टूबर 2020 को हुई। फराज 'पैगाम-ए-दिल' में संवाददाता थे। इस मामले में पुलिस को मुखबिरी के शक में हत्या की आशंका जतायी गयी है क्योंकि असलम पत्रकार होने के साथ-साथ पुलिस मित्र भी थे। इस हत्या के ज्यादा विवरण उपलब्ध नहीं हैं। पुलिस ने जिस शख्स को गिरफ्तार किया था उसने अपना जुर्म कुबूल कर लिया जिसके मुताबिक उसने असलम को इसलिए मारा क्योंकि वह उसके अवैध धन्धों की सूचना पुलिस तक पहुँचाते थे। ज्यादातर मामलों में हुई गिरफ्तारियाँ इस बात की पुष्टि करती हैं कि मामला हत्या का था।

शरीरिक हमलों की सूची बहुत लम्बी है। कम से कम 50 पत्रकारों पर पाँच साल के दौरान शारीरिक हमला किया गया, जो इस रिपोर्ट में दर्ज है। हत्या के बाद यदि संख्या और गम्भीरता के मामले में देखें तो कानूनी मुकदमों और नोटिस के मामले 2020 और 2021 में खासकर सबसे संगीन रहे हैं। उत्तर प्रदेश का ऐसा कोई जिला नहीं बचा होगा जहाँ पत्रकारों को खबर करने के बदले मुकदमा न झेलना पड़ा हो।

खबर को सरकारी काम में दखल और षडयंत्र मानने से लेकर अब पत्रकार को पत्रकार न मानने तक बात आ पहुँची है। यह परिघटना भी केवल स्थानीय पत्रकारों तक सीमित नहीं है, बल्कि उत्तर प्रदेश में बीबीसी और हिन्दू जैसे प्रतिष्ठित संस्थानों के पत्रकारों के साथ भी यही बरताव किया जाता है। थाने में बुलाकर पूछताछ, हिरासत, आदि की घटनाएँ भी इस रिपोर्ट में दर्ज हैं। जासूसी के मामले में उत्तर प्रदेश से जो पत्रकार पेगासस की जद में आये हैं, उनमें डीएनए लखनऊ के पूर्व पत्रकार दीपक गिडवानी और इलाहाबाद से प्रकाशित पत्रिका 'दस्तक नये समय की' की सम्पादक सीमा आजाद हैं।

न सिर्फ एडिटर्स गिल्ड, बल्कि प्रेस क्लब ऑफ इंडिया से लेकर सीपीजे, आरएसएफ और प्रादेशिक पत्रकार संगठनों की चिन्ताओं के केन्द्र में उत्तर प्रदेश की घटनाओं का होना बताता है कि यहाँ चारों ओर से पत्रकारों की घेराबन्दी की जा रही है।

अपने निष्कर्ष में रिपोर्ट कहती है कि महामारी के बहाने निर्मित किये गये एक भयाक्रान्त वातावरण के भीतर मुकदमों, नोटिसों, धमकियों के रास्ते खबरनवीसी के पेशेवर काम को सरकार चलाने के संवैधानिक काम के खिलाफ जिस तरह खड़ा किया गया है, पत्रकारों की घेरेबन्दी अब पूरी होती जान पड़ती है। ○

नफरती भाषणों के जरिये भारत को रवांडा बनाने की कोशिश

हिन्दुत्ववादियों पर भारत को हिन्दू राष्ट्र बनाने का नशा सवार हो गया है। ये नशा देश को सिर्फ और सिर्फ तबाही और बर्बादी की तरफ ले जायेगा। हिन्दुत्ववादी संगठनों और उनके नेताओं द्वारा अल्पसंख्यकों, खासकर मुसलमानों के प्रति लगातार नफरत परोसी जा रही है। आइए, हिन्दुत्ववादी संगठनों की गतिविधियों और सरकार की चुप्पी का विश्लेषण किया जाये।

पिछले साल 12 जुलाई को हरियाणा के पतोधी में हिन्दू राष्ट्र के लिए महापंचायत का आयोजन किया गया। इस आयोजन में मुसलमानों के खिलाफ खुलेआम भड़काऊ भाषण दिये और नारे भी लगाये गये। संविधान की धारा 51 साझी विरसत को सम्भाल कर रखने की बात करता है। और इसकी अवहेलना करने वाले को सजा का भी प्रावधान है। फिर भी महापंचायत की गतिविधियों से किसी की भी गिरफ्तारी नहीं हुई। 9 अगस्त को दिल्ली के जन्तर मन्तर पर भारत जोड़ों के नाम पर रैली का आयोजन हुआ। अश्वनी उपाध्याय (बीजेपी पूर्व प्रवक्ता) और आरएसएस के कई सारे नेताओं ने देश के अल्पसंख्यक गिरफ्तार किये गये और छोड़ भी दिये गये। 19 दिसम्बर 2021 को तो हरिद्वार में 2 दिन की धर्मसंसद चलायी गयी। धर्मसंसद में यति नरसिंहानन्द नौजवानों को आधुनिक हथियार उठाने का आह्वान करते हुए कहते हैं कि लड़ाई बड़ी है तो बेहतरीन हथियार से ही जीती जा सकती है। अश्वनी उपाध्याय का रंग भगवा ही होना चाहिए था। साध्वी अन्नपूर्णा कहती हैं कि हिन्दू राष्ट्र बनाने के लिए अगर 20 लाख मुसलमानों को मारकर 100 हिन्दू भी शहीद हो जाते हैं तो समझो हमारी विजय हुई है। धर्मसंसद की कार्यवाहियों से साफ पता चलता है कि ये धर्म के ठेकेदार हमारे नौजवानों और आने वाली पीढ़ियों के हाथ से कलम छीनकर हथियार थमा देना चाहते हैं।

जेनोसाइड वॉच दुनिया में धर्म, जाति, नस्ल आदि के आधार पर किये जाने वाली सामूहिक हत्याओं या नरसंहार और गृहयुद्ध पर अध्ययन करने वाली एक संस्था है। प्रो. स्टैंटन इस संस्था के संस्थापक हैं प्रो. ग्रेगोरी एच स्टैंटन "नरसंहार के 10 चरण" के सिद्धान्तकार हैं। प्रो. स्टैंटन ने जस्टिन फॉर ऑल (सबके लिए न्याय) संगठन द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम को सम्बोधित करते हुए कहा कि, "भारत, नरसंहार के आठवें चरण में पहुँच गया है, जो 'विनाश' के चरण में पहुँचने से केवल एक कदम दूर है।" यानी भारत मुस्लिमों के नरसंहार और गृह युद्ध के कगार पर खड़ा है। उन्होंने भारत सरकार की चुप्पी पर भी हैरानी जतायी है। प्रो. स्टैंटन ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को हिन्दू चरमपंथी समूह के रूप में सम्बोधित करते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की आलोचना भी की है। प्रो. स्टैंटन ने 1989 में अफ्रीकी देश रवांडा के बारे में भी नरसंहार की चेतावनी दी थी, जो सच साबित हुई। उस समय रवांडा की सत्ताधारी पार्टी ने संचार के प्रमुख साधन रेडियो के माध्यम से रवांडा के अल्पसंख्यक समुदाय "तुत्सी" के खिलाफ नरफरत का प्रचार किया था। उन्हें कॉकरोच की संज्ञा दी गयी थी। 1994 आते-आते नफरत से भर चुके बहुसंख्य हुतु समुदाय के लम्पटों ने महज 100 दिनों में 10 लाखों तुत्सियों का नरसंहार किया था। उनकी महिलाओं को बन्दी बनाकर सरेआम बलात्कार किया। तुत्सी परिवारों की जीविका उजाड़ दी गयी और उनकी सम्पत्ति पर कब्जा कर लिया गया। लाखों परिवार विस्थापित हुए। रवांडा में तुत्सियों के प्रति उदार हुतु समुदाय के लोगों को भी नहीं बख्शा गया, जिसने भी तुत्सियों की मदद करने की कोशिश की उसके साथ भी वैसा ही सुलूक किया गया। नरसंहार के इस पूरे अभियान में सैन्य बलों ने खुलकर हत्यारों का साथ दिया और खुद भी हत्याओं में शामिल हुए। अब पिछले 10 साल में संचार के प्रमुख साधनों टीवी और सोशल मीडिया पर मुस्लिमों के खिलाफ किये जा रहे प्रचार को याद कीजिये। साथ ही गुजरात, मुजफ्फरनगर और दिल्ली दंगों में पुलिस की भूमिका पर भी गौर करिये। प्रो. स्टैंटन का आकलन हवाई नहीं है। उनके बताये दस चरणों को भारत में पिछले आठ साल से हो रही घटनाओं के साथ जोड़कर देखिये--

(1) "हम बनाम उनके" का "वर्गीकरण" था। यानी इस चरण में समाज में दो पाले बँटने शुरू हो जाते हैं, यह पहचान, धर्म के आधार पर भी हो सकती है और नस्ल के आधार पर भी।

(2) "प्रतीकात्मकता" ने पीड़ितों को "विदेशी" नाम दिया। जो पीड़ित पक्ष है, उसे विदेशी कह कर उसे अलग पहचान देने की यह स्टेज होती है।

(3) "भेदभाव" "नागरिकता के लिए स्वीकार किये गये समूह से पीड़ितों को वर्गीकृत किया गया" ताकि उनके पास "नागरिकता के लिए मानवाधिकार या नागरिक अधिकार न हों ताकि, उनके साथ कानूनी रूप से भेदभाव किया

जा सके। इस चरण में, पीड़ितों के नागरिक होने पर ही सवाल खड़ा कर दिया जाता है और उनसे नागरिक होने के सबूत माँगे जाते हैं।

(4) अमानवीकरण "जब नरसंहार सर्पिल रूप में नीचे की ओर जाने लगता है। आप दूसरों को अपने से बदतर रूप में वर्गीकृत करते हैं। आप उन्हें 'आतंकवादियों' या जानवरों जैसे नाम देने लगते हैं। उन्हें राजनीतिक शरीर में कैंसर के रूप में सन्दर्भित करना शुरू कर देते हैं। आप उनके बारे में एक ऐसी बीमारी के रूप में बात करते हैं जिससे किसी तरह निपटा जाना चाहिए।

(5) नरसंहार करने के लिए एक "संगठन" का होना जरूरी होता है। अलग-थलग कर देने के बाद, नरसंहार को अंजाम देने के लिए एक कोर संगठन की जरूरत होती है। पहले चार चरण, पीड़ितों या नरसंहार के लिए लक्षित या टारगेटेड समूह पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डाल कर उन्हें हतोत्साहित करते हैं।

(6) "ध्रुवीकरण" का भी महत्त्व होता है। मनोवैज्ञानिक रूप से नरसंहार की अपरिहार्यता बनाये जाने के बाद, दुष्प्रचार की भूमिका और महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

(7) नरसंहार के लिए "तैयारी" की जाती है।

(8) "उत्पीड़न" शुरू कर दिया जाता है। जहाँ ऐसे टारगेटेड धार्मिक या नस्ली समूह, जिनका नरसंहार या खात्मा किया जाना है, उनका लगातार, जानबूझकर उत्पीड़न किया जाता है और उत्पीड़न के नये बहाने ढूँढे जाते हैं।

(9) विनाश लीला शुरू हो जाती है।

(10) पीड़ितों की किसी भी मदद से "इनकार" किया जाता है। जब नरसंहार को रोकने के लिए उठने वाली हर आवाज नकार दी जाती है।

इन चरणों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि हमारा समाज धार्मिक रूप से असहिष्णु होता जा रहा है जो इस बात का संकेत है कि आनेवाले समय में दंगे, नरसंहार या गृह युद्ध भड़क सकते हैं। दुनिया में किसी भी देश की जन पक्षधर सरकार यह कतई नहीं चाहेगी कि उसके देश की शान्ति व्यवस्था भंग हो। लेकिन भारत की सत्ताधारी पार्टी को इन बातों की कोई फिक्र नहीं है। उनके पास देश की तरक्की की कोई भी योजना नहीं है। पूँजीपतियों की लूट-खसोट जारी रहे, इसके लिए वे उनके नेता समाज को हिन्दू-मुसलिम में बाँटकर गुमराह कर रहे हैं और देश को रवांडा जैसी स्थिति में धकेल रहे हैं।

-- नवनीत

भारत में सच्चे पत्रकारों की जान जोखिम में

न्यू यार्क स्थित एक संगठन पोलिस प्रोजेक्ट के अनुसार भारत में बीते दो साल में 228 पत्रकारों पर 256 हमले हुए हैं। कमिटी टू प्रोटेक्ट जर्नलिस्ट (सीपीजे) के अनुसार पत्रकारिता का पेशा बहुत खतरनाक होता जा रहा है और पिछले एक साल में भारत में मारे गये पत्रकारों की संख्या दुनिया में सबसे अधिक है। चार पत्रकारों की हत्या उनके काम के प्रतिशोध में किये जाने की पुष्टि की गयी है। भारत में इस समय कई पत्रकार जेल में बंद है। केरल के पत्रकार सिद्दीक कप्पन को पिछले साल अक्टूबर में उस वक्त गिरफ्तार कर लिया गया था जब वह उत्तर प्रदेश के हाथरस में हुए एक बलात्कार और हत्या के मामले में पीड़िता का शव पुलिस द्वारा चुपचाप जला दिये जाने की खबर जनता के सामने ले आये। पोलिस प्रोजेक्ट की सुचित्रा विजयन कहती हैं कि भारत में पत्रकारों को सरकार द्वारा ही अलग-अलग तरीकों से काम करने से रोका जा रहा है। सुचित्रा विजयन कहती हैं कि सरकार भारत में पत्रकारों को धमकाकर, गिरफ्तार करके या फर्जी मामले दर्ज करके या किसी तरह की पाबंदियाँ लगाकर चुप करवा रही है। जो सरकार के खिलाफ बोलते हैं उन पर देशद्रोह जैसे मुकदमे और गिरफ्तारी का खतरा है।

रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स की एक रिपोर्ट में भी भारत को पत्रकारिता के लिए दुनिया के सबसे खतरनाक देशों में माना गया है। संस्था द्वारा जारी 2021 वर्ल्ड प्रेस फ्रीडम इंडेक्स में भारत को 180 देशों में 142 स्थान मिला है, जो मीडिया-स्वतंत्रता की बेहद खराब स्थिति को जाहिर करता है। इसी साल रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स ने दुनिया के 37 ऐसे नेताओं की सूची जारी की थी, जो मीडिया पर लगातार हमलावर हैं। उनमें भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का भी नाम है।

भारत में अमीरी-गरीबी की बढ़ती खाई

पिछले दिनों विश्व असमानता रिपोर्ट जारी हुई थी। इस रिपोर्ट को 'वर्ल्ड इनइक्वैलिटी लैब' के सह निदेशक लुकस चोसेल ने फ्रांस के अर्थशास्त्री थॉमस पिकेटी के सहयोग से तैयार किया है। इस रिपोर्ट का उद्देश्य दुनिया भर में असमानता को उजागर करना है। इसके अनुसार भारत दुनिया के सबसे ज्यादा असमानता वाले देशों में से एक है। इस रिपोर्ट के आने के बाद भारत सरकार के होश उड़ गये हैं। वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने इस रिपोर्ट को सही मानने से इनकार किया है। मौजूदा सरकार और कर भी क्या सकती है?

रिपोर्ट में बताया गया है कि 2021 में भारत में एक फीसदी अमीरों की आमदनी देश की कुल आमदनी का एक चौथाई है। यही एक फीसदी लोग देश की 33 फीसदी सम्पत्ति के मालिक भी हैं। इसके साथ ही रिपोर्ट में सबसे अमीर 10 फीसदी लोगों की आमदनी और सम्पत्ति का भी जिक्र किया गया है। इनकी आमदनी देश के सभी लोगों की कुल आमदनी के आधे से भी ज्यादा है। ये 10 फीसदी लोग देश की 65 फीसदी सम्पत्ति के भी मालिक हैं।

रिपोर्ट में देश की गरीब बहुसंख्यक आबादी की आय और सम्पत्ति के बारे में भी बताया गया है। देश के सबसे गरीब 50 फीसदी लोगों की आमदनी देश की कुल आमदनी का महज 13.1 फीसदी है। साथ ही देश की इस आधी आबादी के पास सम्पत्ति के नाम पर कुछ भी नहीं है। ये तथ्य विकास के तमाम खोखले दावों की हकीकत बयान करने के साथ भारत की जनता की भयावह स्थिति को दर्शा रहे हैं।

रिपोर्ट में भारत की दशा का जिक्र करते हुए कहा गया है कि "भारत में काफी गरीबी और असमानता है, जबकि यहाँ एक वर्ग अकूत सम्पत्ति का मालिक है" जिसके कारण आज भारत की हालत अंग्रेजी दौर से भी बदतर हो गयी है। रिपोर्ट के अनुसार इसकी वजह भारत में किये गये आर्थिक सुधार और उदारीकरण तथा निजीकरण की नीतियाँ हैं।

1980 के दशक में शुरू हुए इन आर्थिक सुधारों ने दुनियाभर में आर्थिक असमानता को बढ़ावा दिया। आज भारत में इन आर्थिक सुधारों का परिणाम यह है कि एक तरफ देश की आधी आबादी के पास न तो आय है और न ही सम्पत्ति। वहीं दूसरी तरफ चन्द मुट्ठीभर करोड़पति-अरबपतियों का देश के तमाम संसाधनों पर कब्जा हो गया है और वे अकूत दौलत कमा रहे हैं।

सम्पत्तिविहीन आधी आबादी यानी लगभग 70 करोड़ लोग कौन है? देश के कुल मजदूरों का 93 फीसदी मजदूर असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं। इसमें तमाम तरह के उपभोक्ता सामान बनाने वाले और सड़कों से लेकर इमारतों तक हर तरह का निर्माण करने वाले मजदूर शामिल हैं। इनमें मोची, धोबी, नाई, सिक्योरिटी गार्ड, बिजलीवाले, हॉकर्स, रेहड़ी-खोमचेवाले, सफाई कर्मचारी आदि जैसे बुनियादी काम करनेवाले लोग हैं। गाँव के खेत मजदूरों समेत तमाम तरह के मजदूर हैं। इन 70 करोड़ लोगों में सबसे कठोर श्रम करके भी निम्न स्तर की जिन्दगी जीने वाले लोग शामिल हैं।

इसके अलावा एक दूसरा आँकड़ा भी गौर करने लायक है। देश के कुल किसानों का 84 फीसदी छोटे किसान हैं। इनकी कुल आबादी लगभग 50 करोड़ है। इनके पास सम्पत्ति के नाम पर छोटे-छोटे खेत तो जरूर हैं लेकिन इनकी दशा भी बेहद दयनीय है। अधिकांश कर्ज के बोझ तले दबे हैं। इनके श्रम के बिना जीवन सम्भव नहीं है।

देश में नाममात्र की सम्पत्ति वालों की कुल आबादी 100 करोड़ से भी अधिक है। सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकतर सर्वेक्षण भी भारत में 25 से 30 करोड़ की आबादी को ही उपभोक्ता वर्ग में शामिल करते हैं। इनमें पूँजीपति, नेता, फिल्मी कलाकार, क्रिकेट खिलाड़ी, उच्च प्रशासनिक अधिकारी, कम्पनियों के उच्च अधिकारी आदि करोड़ों-अरबों की सम्पत्तिवाले लोग हैं।

निजीकरण की नीतियों को इन्हीं धन्नासेठों के आर्थिक लाभ के लिए लागू किया गया था। इन नीतियों के बिलकुल वही नतीजे सामने आये हैं जैसा सरकार चाहती थी। आज इन सुधारों से बहुसंख्यक आबादी के मुँह से निवाला छीनकर मुट्ठीभर धन्नासेठों को मालामाल किया जा रहा है। सरकार ने बहुसंख्यक अवाम की रियायतों को बन्द कर दिया और जनता को बुनियादी जरूरतें-- शिक्षा, चिकित्सा, परिवहन, बिजली-पानी जैसी सेवाएँ चन्द पूँजीपतियों के मुनाफा कमाने की चीजें बना दी। अब इन्हें हासिल करना जनता के लिए जिन्दगी-मौत का सवाल बन गया है।

सरकार पूँजीपतियों की सेवा में कितनी मुस्तैद है इस बात का अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि जब पूरा देश कोरोना में त्राहिमाम कर रहा था। उसी समय सरकार ने पूँजीपतियों की लूट को बढ़वा देने वाले कानूनों को जनता पर थोप दिया। इन कानूनों की वजह से किसान और मजदूर के सामने अपना अस्तित्व बचाने का संकट आन पड़ा।

एक तरफ देश में आलीशान घरों में रहने वाले लोग हैं। जिनके लिए दुनिया की तमाम एशो-आराम इसी देश में मौजूद है। दुनियाभर के ज्ञान से लबरेज स्कूल, अत्याधुनिक अस्पताल, हाइवे-एक्सप्रेसवे, हवाई अड्डे, पाँच सितारा होटल आदि। दूसरी तरफ बहुसंख्यक अवाम है जो दो जून की रोटी के लिए अपने शरीर का एक-एक हिस्सा बेचने को मजबूर है। उसकी जिन्दगी में भरपेट खाना एक सपना हो गया है।

-- सत्येन्द्र

त्रिपुरा हिंसा की वह घटना जब तस्वीर लेना ही देशद्रोह बन गया!

26 अक्टूबर को त्रिपुरा राज्य के चमटीला में विश्व हिन्दू परिषद (वीएचपी) ने एक रैली निकाली थी। यह रैली बांग्लादेश में हिन्दुओं पर हो रहे हमलों के विरोध में निकाली थी। जल्द ही हिन्दू परिषद के कार्यकर्ता मुसलमान विरोधी नारे लगाने लगे और रैली ने उग्र रूप धारण कर लिया। शाम होते-होते हिन्दुत्ववादी गुण्डों ने पानीसागर इलाके में मुसलमानों के धार्मिक स्थलों, दुकानों और घरों में आगजनी व तोड़-फोड़ शुरू कर दी। करोड़ों की सम्पत्ति का नुकसान हुआ। जब धर्मान्ध भीड़ तोड़-फोड़ और आगजनी कर रही थी तो त्रिपुरा पुलिस मूकदर्शक बनकर देखती रही।

त्रिपुरा की भाजपा सरकार हिन्दुत्ववादी गुण्डों का इस हद तक सर्मथन कर रही है कि आज तक एक भी उपद्रवी को गिफ्तार नहीं किया गया है और न ही किसी की पहचान की गयी है। इसके उलट इस साम्प्रदायिक हिंसा को सबके सामने लाने वाले पत्रकारों, वकीलों और सामाजिक कार्यकर्ताओं पर त्रिपुरा पुलिस देशद्रोह के मुकदमें लगा रही है। अभी तक 100 से भी ज्यादा लोगों पर यूएपीए जैसी धाराओं में मुकदमें दर्ज हो चुके हैं और कई लोग जेल में भी डाले जा चुके हैं। सुप्रीम कोर्ट द्वारा चार वकीलों की एक फैक्ट-फाइंडीग टीम त्रिपुरा भेजी गयी तो त्रिपुरा पुलिस ने तमाम सीमाएँ लागते हुए उन पर भी गम्भीर धाराओं में मुकदमें लगा दिये। हिंसा पर मुख्यमंत्री विप्लव देव का कहना है कि "कहाँ हिंसा हुई मैनें तो नहीं देखी"। यानी अब उसे ही हिंसा माना जाएगा, जिसके चस्मदीद मुख्यमंत्री खुद होंगे।

त्रिपुरा हिंसा से ठीक 13 दिन पहले बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना ने भारत सरकार से कहा था कि "भारत में ऐसा कुछ नहीं होना चाहिए, जिससे हमारा देश प्रभावित हो और हमारे देश के हिन्दुओं को मुश्किलों का सामना करना पड़े। भारत में मुसलमानों के खिलाफ कुछ होता है तो हमारे यहाँ के हिन्दू भी उससे प्रभावित होते हैं।" इसके बावजूद त्रिपुरा की सरकार ने विश्व हिन्दू परिषद को यह भड़काऊ रैली करने दी।

2019 में त्रिपुरा में भाजपा पहली बार सत्ता में आयी। अमूमन शान्त रहने वाला यह राज्य तभी से हिन्दुत्ववादी गिरोह के खुले उत्पात का क्षेत्र बना हुआ है। खुद मुख्यमंत्री विप्लव देव हर रोज भड़काऊ और विघटनकारी बयानबाजी करते हैं। एक महीने पहले ही हिन्दुत्ववादी गुण्डों ने एक प्रतिष्ठित अखबार "प्रतिवादी कलम" के दफ्तर में तोड़-फोड़ और आगजनी की और पत्रकारों की गाड़ियों में आग लगा दी थी। कारण यह था कि इस अखवार ने 150 करोड़ रुपये के एक कृषि घोटाले को उजागर किया था। इसी तरह तृणमूल कांग्रेस की सांसद सुष्मिता देव के साथ भी हिन्दुत्ववादी गुण्डों ने मारपीट की, उनके कार्यकर्ताओं के घरों और दफ्तरों में तोड़-फोड़ की और 30 से अधिक कारों को आग के हवाले कर दिया। सांसद ने मुख्यमंत्री पर आरोप लगाया है कि वह हिन्दुत्ववादी गुण्डों के सामने नतमस्तक हैं और इन पर कार्रवाई करने के बजाय उन्हें संरक्षण दे रहे हैं।

13 अक्टूबर की हिंसा के बाद "न्यूज नेटवर्क" की दो पत्रकार त्रिपुरा हिंसा की रिपोर्टिंग करने गयीं तो पहले उन्हें भी पुलिस द्वारा परेशान किया गया। उनके आधार कार्ड, पैन कार्ड, पोस्ट कार्ड फोटो थाने में जमा कराये गये। इसके बावजूद पुलिस इनका पीछा करती रही। इन्हें घटना स्थल पर जाने से रोका गया। इसके बाद भी पत्रकार अपना काम करती रही तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। गिरफ्तारी का कारण हिन्दू परिषद के लोगों द्वारा इनकी शिकायत करना बताया गया। कोर्ट के हस्तक्षेप पर पत्रकारों को रिहा किया गया। 'न्यूज क्लिक' के पत्रकार श्याम मीरा सिंह ने अपने फेसबुक पेज पर "त्रिपुरा जल रहा है" केवल इतना ही लिख दिया तो उन पर यूएपीए के तहत मुकदमा दर्ज कर दिया गया।

पत्रकारों और कुछ संगठनों ने त्रिपुरा हिंसा पर संज्ञान लेने के लिए सुप्रीम कोर्ट में याचिका भी दायर की थी। इस पर सुप्रीम कोर्ट ने चार वकीलों के एक दल का गठन किया और उन्हें चार हफ्तों में रिपोर्ट सौंपने को कहा। जब यह दल त्रिपुरा पहुँचकर जली दुकानों और घरों के वीडियो बनाने और फोटो खींचने लगा तो त्रिपुरा पुलिस ने इन्हें गिरफ्तार कर लिया और इस दल पर अलग-अलग धाराओं में सात मुकदमे लगा दिये गये।

त्रिपुरा हिंसा के साक्ष्य जुटाने वाले पत्रकार, बुद्धिजीवी, वकील जेल में ठूँस दिये गये हैं जबकि हिन्दू परिषद के गुण्डे, जिन्होंने इस हिंसा को अन्जाम दिया था, वह आजाद घूम रहे हैं। इनके नफरत फैलाने वाले सैकड़ों मैसेज सोशल मीडिया पर वायरल हो रहे हैं। इन पर अभी तक कोई कार्रवाई नहीं हुई और न आगे होने की सम्भावना है क्योंकि जब धर्म की चासनी में राजनीति घुल जाती है, तब समाज में कट्टरता और साम्प्रदायकिता अपना नंगा नाच दिखाती हैं। त्रिपुरा में यहीं हो रहा है।

आज अगर खामोश रहे/ तो कल सन्नाटा छायेगा
हर बस्ती में आग लगेगी/ हर आँगन जलाया जायेगा।

"भारत भगाओ" के रास्ते पर मालदीव

मालदीव के पूर्व राष्ट्रपति अब्दुल्लाह यामेन अपने राष्ट्र से भारत को भगाने के लिए आजकल एक अभियान का नेतृत्व कर रहे हैं। पिछले कई महीनों से "भारत भगाओं" आन्दोलन मालदीव में जोर पकड़ता जा रहा है। भारत में मुस्लिमों के खिलाफ होने वाली घटनाएँ और बयानबाजी इस अभियान में ईंधन का काम कर रही हैं।

मालदीप की आबादी मुख्यतः सुन्नी मुसलमानों की है। प्राचीन काल से भारत और मालदीव एक दूसरे के बेहद महत्त्वपूर्ण मित्र रहे हैं। नेपाल की तरह मालदीव भी अपनी अधिकांश घरेलू जरूरतों को पूरा करने के लिए भारत पर निर्भर है। भारत और मालदीव के सम्बन्धों की स्थिति भी भारत-नेपाल सम्बन्धों जैसी है। नेपाल की तरह ही यहाँ भी चीन भारत को पीछे धकेलकर अपनी स्थिति मजबूत कर रहा है। भारतीय शासकों की मूर्खता ने उनके काम को और आसान कर दिया है।

यामेन और उनकी राजनीतिक पार्टी पीपीएम के नेतृत्व में चल रहे "इण्डिया ऑउट" अभियान का दिखावटी लोकप्रिय उद्देश्य भारतीय सैन्य कर्मियों और उनके उपकरणों को मालदीव से बाहर निकालना है। 2018 में राष्ट्रपति अबदुल्लाह यामेन ने तौहफे के रूप में भारत से मिले दो हेलीकॉप्टर और एक डोर्नियर विमान वापस लेने के लिए कहा था और प्रचारित किया था कि यह मालदीव की स्वायत्ता के खिलाफ है।

इस साजो-सामान को बचाव और जीवन रक्षक मिशन के लिए मालदीव में लगाया गया था। पीपीएम का दृष्टिकोण यह है कि अगर वह भारत से उपहार में दिये गये थे तो मालदीव के पायलटों को विमान का संचालन करना चाहिए ना कि भारतीयों को। राजधानी माले की सड़कों पर भारत विरोधी प्रर्दशन अब आम बात हो गयी है। हालत यहाँ तक बिगड़ चुकी है कि मालदीव के कई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति खुलकर भारत के खिलाफ बयान दे चुके हैं।

इस साल 5 दिसम्बर को आईलैंड एविएशन सर्विस लिमिटेड के पूर्व निदेशक ने ट्वीट किया कि "एक डोर्नियर लेना कोई मुद्दा नहीं है लेकिन डोर्नियर के साथ भारतीय सैनिकों की तैनाती के हम खिलाफ हैं।..."

मालदीव की पूर्व मंत्री लुवाना जाहीर ने 6 दिसम्बर को ट्वीट किया कि "मैं भारतीय व्यजनों, भारतीय दवाईयों को बेहद पसन्द करती हूँ लेकिन हमारी धरती पर भारतीय सेना नहीं होनी चाहिए।" एक अन्य पूर्व मंत्री अहमद तौफीक ने 21 नवम्बर को ट्वीट किया कि "पूरे मालदीव के लोग अपने देश में भारतीय सैनिकों की उपस्थिति से गुस्सा और निराशा जाहिर कर रहे हैं।"

20 नवम्बर को पीपीएम के आधिकारिक ट्विटर हैंडल से ट्विट से कहा गया कि भारतीय सैनिक फुवहमुलाह शहर से चले जायें। फुवहमुलाह शहर में "इंडिया मिलिट्री ऑउट" के नारे के साथ लोगों ने सड़कों पर बड़ी सख्या में विरोध प्रदर्शन किया।

भारत में सत्तारूढ़ भाजपा ने इंटरनेट और दूसरे संचार साधनों का इस्तेमाल करके मुस्लिमों के खिलाफ एक आम घृणा को जन्म दिया है। इसका इस्तेमाल यामेन और उनके समर्थक मालदीव के आम नागरिकों के मन में भारत के खिलाफ जहर भरने के लिए कर रहे हैं। इसका फायदा उठाकर चीन समर्थक यामेन द्वारा मालदीव को निर्णायक रूप से चीन की और झुका देने की सम्भावनाएँ बहुत ज्यादा बढ़ गयी हैं। इसका प्रमाण इस तथ्य से भी मिलता है कि 2018 में एक समझौता उम्मीदवार के रूप में राष्ट्रपति चुने जाने के तुरन्त वाद इब्राहिम सालेह की नीति "इंडिया फर्स्ट" की थी। लेकिन भारत का दबाब था कि वह "इंडिया ओनली" की नीति अपनाये। भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी सालेह के शपथ ग्रहण समारोह में भी शामिल हुए थे और कई समझौतों पर हस्ताक्षर भी किये थे। सालेह ने अपनी चालाकी से "इंडिया फर्स्ट" पॉलिसी का प्रस्ताव रखा जिसके तहत सालेह की नयी नीतियों से चीन की पूरी तरह से रूकावट नहीं हो सकी। उसने रक्षा सहयोग समझौते के माध्यम से भारत को अधिक स्थान का समझौता तो किया लेकिन इसे अभी तक संसद से मंजूर नहीं कराया। सालेह की सरकार भारत और चीन के कारण काफी दबाब में है लेकिन वह अपनी जमीन पर किसी दूसरे देश की मौजूदगी नहीं चाहेगी। इसके साथ ही सालेह की कोई ऐसी नीति नहीं है जिसके जरिये चीन को रोकने की मंशा झलकती हो मालदीव ने चीन के साथ मुक्त व्यापार समझौता किया है। इससे साफ जाहिर होता है कि मालदीव भारत से कितना दूर हुआ है और चीन के कितना करीब जा चुका है।

जिस मालदीव में आज भारत के डोर्नियर और उसकी संचालक टीम को भगाने के लिए आन्दोलन हो रहा है उसी मालदीव ने 2016 में चीनी कम्पनी को एक द्वीप 50 सालों के लिए कुल 40 लाख डॉलर में लीज पर दे रखा है। स्वयत्तता के मामले में कहीं ज्यादा गम्भीर इस घटना को लेकर मालदीव में कहीं भी चीन विरोधी अभियान नहीं चल रहा है।

भारत को सालेह सरकार ने रक्षा समझौते में प्राथमिकता दी है लेकिन विकास की परियोजनाओं में चीन काफी आगे है। भारत ने मालदीव को बड़े पैमाने पर आर्थिक मदद दी है लेकिन इसका कोई विशेष लाभ भारत को मिलता नजर नहीं आ रहा है। मालदीव के विदेशी सम्बन्धों की सूई धीरे-धीरे चीन की ओर झुकती जा रही है। अगर मालदीव निर्णायक रूप से चीन की ओर चला गया तो यह भारत के लिए बहुत बड़ा झटका होगा।

-- अनुराग

शिक्षा में बायजू का बढ़ता एकाधिकार

पिछले साल जुलाई में 'बायजू क्लासेज' नामक ऑनलाइन एजूकेशन कम्पनी ने 7300 करोड़ रुपये में 'आकाश इंस्टीट्यूट' नामक एक कोचिंग संस्थान को खरीद लिया। आकाश इंस्टीट्यूट इंजीनियरिंग और मेडिकल की प्रवेश परीक्षाओं की तैयारी करवाने वाला नामी-गिरामी कोचिंग संस्थान है। इसके 205 सेन्टर हैं और कुल सालाना कारोबार 1200 करोड़ रुपये का है। इस सौदे को शिक्षा उद्योग का सबसे बड़ा सौदा बताया जा रहा है। इसे खरीदने वाली कम्पनी को इसके मालिक बायजू रविन्द्रन ने साल 2011 में बायजू क्लासेज नाम से स्थापित किया था। यह कम्पनी साल 2015 में अपना मोबाइल एप्प बनाकर ऑनलाइन एजूकेशन के क्षेत्र में उतरी और आज वह 24,300 करोड़ रुपये की मालियत वाली कम्पनी है।

इसके अलावा बायजू लगभग 10 ऑनलाइन एजूकेशन प्लेटफार्म और खरीद चुकी है। इन शिक्षा कम्पनियों का अधिग्रहण करके बायजू स्कूली शिक्षा और कोचिंग के क्षेत्र में एकाधिकार करने की तरफ बढ़ गयी है। आज बायजू के 10 करोड़ से अधिक पंजीकृत छात्र छात्राएँ हैं जिन्हें नर्सरी से बारहवीं तक हर विषय की पढ़ाई से लेकर इंजीनियरिंग और मेडिकल कॉलेजों की प्रवेश परीक्षाओं तक की तैयारी अकेले ही कराने में वह सक्षम है। पहली नजर में सामान्य लगने वाले यह समझौते असल में गहरे मायने रखते हैं। वैसे तो कॉरपोरेट क्षेत्र में कम्पनियों की आपसी खरीद-फरोख्त आम बात है लेकिन अगर कोई पूँजीपति शिक्षा जैसी बुनियादी जरूरत के क्षेत्र में एकाधिकार कायम कर ले तो यह बेहद खतरनाक है।

दरअसल शिक्षा अपने मूल स्वभाव में सामाजिक गतिविधि है। बच्चा सामाजिकता का पहला पाठ स्कूल में ही पढ़ता है। हालाँकि मौजूदा दौर में शिक्षा को अपने इस उद्देश्य से दूर करके रोजगार और कैरियर बनाने के एक माध्यम तक ही सीमित कर दिया गया है। समाज में यह बात स्थापित कर दी गयी है कि जिस बच्चे के शैक्षिक अंक कम रह गये उसका भविष्य अंधेरे में है। इससे अभिभावकों में यह डर बैठ गया है कि कहीं उनके बच्चे भविष्य की इस दौड में पिछड़ ना जाये। भयावह बेरोजगारी के दौर में यह डर रोज सच साबित होना ही है। इस डर को ही आज बायजू जैसी कम्पनियाँ सिक्कों में ढाल रही हैं। अभिभावक नर्सरी से ही बच्चों को ट्यूशन में झोंक दे रहे हैं। नर्सरी से बारहवीं तक की पढ़ाई कोचिंग की बैसाखी के सहारे पूरे करने वाले छात्र जब उच्च शिक्षा के लिए नाम मात्र के अवसरों के लिए मेडिकल, प्रबन्धन, इंजीनियरिंग की प्रवेश परीक्षाओं या न के बराबर सरकारी नौकरियों के लिए होने वाली प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करते हैं तो उनके लिए कोचिंग की ललक और जरूरत दोनों चरम पर पहुँच जाती है। अभिभावक भी शिक्षा व्यवस्था की इस असफलता और अवसरों की बेइन्तहा कमी के चलते हर कीमत पर बच्चों का भविष्य सुरक्षित करने की उम्मीद में अपनी गाढ़ी कमाई इसमें लगा देते हैं।

बाजारू शिक्षा का यह रोग समाज में पिछले दशकों में बहुत फैलाया गया है। आजादी के बाद से 1990 तक देश सरकारी शिक्षा के दम पर आगे बढ़ा। उस समय तक निजी कोचिंग का कोई खास चलन नहीं था बल्कि उसे दोयम दर्जे की निगाह से देखा जाता था। 90 के दशक में शिक्षा के इस क्षेत्र को निजीकरण के हवाले करते हुए दावा किया गया था कि इससे शिक्षा की गुणवत्ता की कमी दूर होगी। यह समाधान समस्या से भी घातक सिद्ध हुआ। एक तरफ इससे साल दर साल सरकारी स्कूलों की हालत गिरती चली गयी वहीं दूसरी ओर तेजी से निजी स्कूलों के रूप में शिक्षा की दुकानें खुलती चली गयीं। 1990 में सरकार जीडीपी का 3.8 फीसदी शिक्षा पर खर्च करती थी जो अब घटकर बामुश्किल 3 फीसदी रह गया है।

सेण्ट्रल स्क्वेयर फाऊन्डेशन की हालिया रिपोर्ट के अनुसार 1978 में देश के 3.4 फीसदी स्कूल ही गैर सरकारी थे। यह अनुपात 2017 तक आते-आते 35 फीसदी तक पहुँच गया। देश के 50 फीसदी से अधिक बच्चे इन्हीं स्कूलों में पढ़ते हैं। अभिभावकों को हर महीने औसतन 3000 रुपये एक बच्चे की शिक्षा के नाम पर निजी स्कूलों को देने पड़ रहे हैं। इसके बावजूद आज भारत में 25,000 करोड़ का कोचिंग उद्योग है। शिक्षा के बाजारीकरण की ऐसी मिसाल शायद ही कोई और मिले।

कोचिंग प्रवृत्ति बढ़ने की एक वजह अधिकांश सरकारी व निजी स्कूलों में शिक्षा की घटिया गुणवत्ता भी है। अधिकांश निजी स्कूलों की हालत यह है कि उनमें 10-12 हजार वेतन पाने वाले वह नौजवान पढ़ा रहे है जो दर्जनों डिग्रियों के बावजूद स्थायी रोजगार नहीं पा सके हैं। खुद मानसिक तनाव और अवसाद में जीने वाले यह नौजवान गुणवत्तापरक शिक्षा दे पाये यह सम्भव ही नहीं है। ऐसे निजी स्कूल केवल होमवर्क देने तक सीमित हैं। वहीं सरकारी स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं का अकाल है। पाठ्य पुस्तकें भी आधा सत्र बीत जाने तक पहुँचती हैं। शिक्षकों की भारी कमी है। देश के एक लाख से अधिक स्कूल केवल एक शिक्षक के भरोसे चल रहे हैं। जो शिक्षक हैं भी, उन्हें सरकार वोट बनाने और सर्वे करने में ही उलझाए रखती है। इस सब का कुल नतीजा यह

निकलता है कि विद्यार्थी शिक्षा से वंचित रह जाते हैं और कोचिंग की ओर भागते हैं। इससे वाकिफ बायजू क्लासेज जैसी कम्पनियाँ इस स्थिति का इस्तेमाल अपना धन्धा चमकाने के लिए करती हैं। बायजू देश के निजी स्कूलों से सीधे समझौते करके बच्चों को अपनी सेवा देने के लिए मजबूर कर रही है। स्कूल का प्रबन्धन खुद अभिभावकों से इनके कोर्स खरीदने के लिए कहता है।

दरअसल आज की पूरी पीढ़ी भविष्य को लेकर भयानक तनाव की शिकार है। आगे बढ़ने के अवसरों की कमी ने समाज में गला काट प्रतियोगिता को बढ़ावा दिया है और किसी भी कीमत पर प्रवेश परीक्षा पास करने की चाह को ही बायजू क्लासेज जैसी कम्पनियाँ अपने उद्योग के लिए भुना रही हैं। यह दबाब इस हद तक पहुँच गया है कि भारत में लगभग हर घण्टे में एक छात्र आत्महत्या कर रहा है।

कोचिंग की प्रवृत्ति बढ़ने की एक अन्य वजह छात्रों का "विज्ञान वर्ग" के विषयों को चुनना और "मानविकी" के विषयों जैसे समाज शास्त्र, राजनीति शास्त्र, दर्शन शास्त्र आदि के प्रति हीन भाव रखना है। आज समाज में यह धारणा अपनी जड़ जमा चुकी है कि जीवन में अगर आगे बढ़ना है तो विज्ञान वर्ग के विषय ही पढ़ने होंगे और मानविकी के विषय तो कमजोर बौद्धिक क्षमता वाले बच्चों के लिए होते हैं। इसलिए बहुत सारे बच्चे रुचि न होते हुए भी इस दबाब के चलते विज्ञान वर्ग के विषय पढ़ते हैं और फिर उसमें अधिक अंक प्राप्त करने के लिए कोचिंग करते है।

कोचिंग संस्थान विद्यार्थी को तार्किक बनाने के बजाय "लकीर का फकीर" और गणना करने वाली मशीन बना देने चाहते हैं। छात्रों को एक ही तरह की गणनाओं का इतनी बार अभ्यास करवाया जाता है कि वे "मानव मशीन" में तब्दील होते चले जाते हैं और समाज से अपना जैविक रिश्ता काट लेते हैं। समाज के लिए जितने जरूरी विज्ञान वर्ग के विषय हैं उतने ही जरूरी मानविकी के विषय भी है। अगर विज्ञान हमें नये औजार और तकनीक मुहैया कराता है तो उस तकनीक और औजार का इस्तेमाल मानवता के खिलाफ करना है या हित में करना है यह समझ मानविकी के विषयों से ही पैदा होती है। लेकिन कोचिंग कम्पनियों को इस बात से कोई सरोकार नहीं है। वह चाहती ही नहीं कि यह समझ बच्चों में पैदा हो। कोचिंग से पढ़ाई करके निकलने वाले बच्चे जीवन में "हुक्म के गुलाम" साबित होते हैं।

बायजू क्लासेज जैसी कम्पनियों का बढ़ता एकाधिकार बहुत जल्द ही स्कूलों को निगल जाएगा। स्कूल और कॉलेज केवल डिग्री और सर्टिफिकेट देने के साधन मात्र रह जाएँगे। पहले ही साधारण आदमी की पहुँच से दूर हो चुकी शिक्षा और दूर चली जाएगी। शिक्षा जो कभी सरकार के जिम्में थी उसे शातिराना ढंग से बायजू क्लासेज जैसी कम्पनियों के हवाले किया जा चुका है। इन कम्पनियों का नारा है "पढ़ों उतना परीक्षा में आये जितना।" इन कोचिंग संस्थानों के पढ़ाने के तरीकों के चलते छात्रों का वैज्ञानिक नजरिया विकसित नहीं हो पा रहा है। होशियार से होशियर छात्र भी वैज्ञानिक बनने के बजाय उच्चे दर्जे का तकनीशियन बनने तक ही सीमित रह जाता है। तकनीशियनों की फौज ही बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए मुनाफा निचोड़ने का असली औजार बनती है। देश की शिक्षा कॉरपोरेट केन्द्रीत हो चुकी है। यह समाज के लिए किसी अभिशाप से कम नहीं है।

--विशाल विवेक

'सुल्ली डील' और 'बुल्ली बाई' का घिनौना काम

'सुल्ली डील' और 'बुल्ली बाई' नाम की ऑनलाइन एप्प की खबर सामने आयी थी। सुल्ली डील एप्प 6 महीने पहले आयी थी जिसमें 100 मुस्लिम महिलाओं की तस्वीरें डालकर उनकी बोली लगाने का मामला सामने आया। 'सुल्ली' या 'सुल्ला' मुसलमानों के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला अपमानजनक शब्द है। इसमें लगभग उन सभी सामाजिक रूप से सक्रिय मुस्लिम महिलाओं को निशाना बनाया गया जो सरकार के खिलाफ बोलती हैं। खैर, इसे किसी तरह काबू किया गया लेकिन छह महीने बाद एक बार फिर ऐसी ही घटना सामने आ गयी। फिर से सैकड़ों मुस्लिम महिलाओं की गढ़ी गयीं गन्दी तस्वीरें एक 'बुल्ली बाई' नामक एप्प पर अपलोड की गयीं। यह पोर्टल कथित तौर पर शनिवार, 1 जनवरी 2022 को लॉन्च किया गया था और इसमें अपमानजनक कंटेंट के साथ पत्रकारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, छात्रों और प्रसिद्ध हस्तियों सहित मुस्लिम महिलाओं की कई फर्जी गन्दी तस्वीरें थीं। ऐप को खोलने पर एक मुस्लिम महिला का चेहरा "बुल्ली बाई" के रूप में प्रदर्शित किया गया था। इसमें ऐसी मुस्लिम महिलाओं को निशाना बनाया गया जो सरकार की जनविरोधी नीतियों की आलोचना करती हैं।

हुकुम, बताओ क्या कहूँ जो आपको चोट न लगे।

हम एक बेहद नाजुक सरकार की गुलामी में जी रहे हैं। कुछ दिन पहले कॉमेडियन "मुन्नवर फारूकी" के मजाक से सरकार को चोट लग गयी। देश की संस्कृति पर खतरा मँडराने लगा, गली-मोहल्ले के संस्कृतिरक्षक आग बबूला हो गये। लिहाजा मुन्नवर फारूकी को जेल की हवा खिलायी गयी। जेल से तो किसी तरह छूट-छाट के आ गये, लेकिन अब उनके कार्यक्रमों पर ही पाबन्दी लगा दी गयी है।

एक जनवरी को मध्य प्रदेश के इंदौर में कॉमेडियन मुनव्वर फारूकी और उनके साथी एडविन एन्थनी, प्रखर व्यास, प्रियम व्यास और नलिन यादव को गिरफ्तार किया गया। गिरफ्तारी इस गुनाह पर की गयी थी कि मुन्नवर फारूकी ने कथित तौर पर हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं और अमित शाह का मजाक उड़ाया था। शिकायत दर्ज कराने वाले भारतीय जनता पार्टी की सांसद मालिनी गौर के बेटे और हिन्दू रक्षक संगठन के संयोजक एकलव्य गौर थे। सोशल मीडिया पर मुनव्वर फारूकी को एक खलनायक बना दिया गया। खैर एक महीने बाद मुन्नवर फारूकी को कोर्ट ने यह कहकर जमानत दे दी कि अगली बार सोशल डिस्टेंसिंग का पालन करना। यानी अदालत ने इसे हिन्दू देवी-देवताओं का मजाक उड़ाने का मामला ही नहीं माना। इस घटना के बाद से मुन्नवर फारूकी के कॉमेडी प्रस्तुतियों पर अघोषित पाबन्दियाँ लग गयीं और उन पर लगातार पहरा रहने लगा और जहाँ भी उनकी प्रस्तुति होती वहाँ प्रशासन किसी ने किसी बहाने से उसे रद्द करवा देता। आखिर में मुन्नवर ने यह कहकर कॉमेडी करना ही छोड़ दिया कि "एक कलाकार के आगे नफरत जीत गयी"। उनका साथी नलिन यादव आजकल मजदूरी करके पेट पाल रहा है। और बाकी दोस्तों की हालत भी कुछ ऐसी ही है। धर्मान्ध मूर्ख लोग अपने ही देश के नौजवान कलाकारों को बरबाद करने में कामयाब रहे।

कॉमेडियन वीर दास के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ। वीर दास भी एक जाने-माने कॉमेडियन हैं जिन्होंने अमरीका के कैनेडी सेंटर में अपने एक शो में बस यह सच कह दिया कि हमारे भारत में दो भारत बसते हैं, एक ऐसा भारत जहाँ दिन में औरतों की पूजा होती है और रात में रेप किया जाता है, एक ऐसा भारत जहाँ हमें अपने शाकाहारी होने पर गर्व है लेकिन हमारे लिए सब्जियाँ उगाने वाले किसानों को कुचल कर मार देने पे हमें कोई फर्क नहीं पड़ता। इसी बात पर उनको सोशल मीडिया में फर्जी संस्कृतिरक्षकों और देशरक्षकों द्वारा ट्रोल किया गया और उन पर देश का अपमान करने के आरोप लगे। सोचने वाली बात है कि मजाक पर भी पाबंदी और संजीदगी पर भी पाबंदी।

इसी फेहरिश्त में कुणाल कमरा, वरुण ग्रोवर, नीति पाल्टा जैसे कलाकारों के नाम भी शामिल हैं।

एक बार महात्मा गाँधी ने कहा था कि "अगर मेरी जिन्दगी में हँसी-मजाक न होता तो मैं कब का आत्महत्या कर चुका होता"। दुनिया में महानतम कलाकारों में से एक चार्ली चैपलिन ने भी एक बार कहा था "बिना हँसी-मजाक के गुजरा एक भी दिन बेकार है"। लेकिन आज हालत यह है कि अगर कोई अच्छा मजाक कर दे या कुछ संजीदा लिख दे या कोई अच्छी फिल्म बना दे या कोई सच्ची खबर छाप दे तो हमारी सरकार नाराज हो जाती हैं, संस्कृति पर खतरा मंडराने लगता है, देश की सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है। और इन हँसाने वालों को, सच बात बताने वालों को, सच बात दिखाने वालों को, सच बात लिखने वालों को सजा-ए-जुर्म में जेल भेज दिया जाता है, उनके कार्यक्रमों पर पाबन्दी लगा दी जाती है और कई बार उनकी हत्या भी कर दी जाती है।

ऐसे ही हालात बुद्धिजीवियों, लेखकों और कलाकारों के है, वो कलाकार या बुद्धिजीवी सरकार के खिलाफ आवाज बुलंद करते है उनके साथ भी ऐसा ही सुलूक किया जाता है। आज देश के 50 फीसदी सांसदों पर गम्भीर आपराधिक मुकदमे दर्ज हैं, लेकिन वे सत्ता की मलाई खा रहे हैं। वहीं देश के कलाकारों, बुद्धिजीवियों और प्रोफेसरों को जेल में डाला जा रहा है। जाहिर है कि सरकार को किसी भी अपराधी से कोई खतरा या परेशानी नहीं है। लेकिन सरकार की गलत नीतियों की आलोचना करनेवाले बुद्धिजीवी से सरकार को डर लगता है।

इस देश में बोलने की आजादी का अधिकार लगभग छीना जा चुका है। आपको अपनी बात कहने का अधिकार तो है, लेकिन उसमें सरकार या सरकारी की कोई आलोचना न हो, आपको लिखने का अधिकार तो है लेकिन वह सच न हो, आपको मजाक करने का अधिकार तो है लेकिन वह अच्छा स्वस्थ्य मजाक न हो और सरकार को बुरा नहीं लगना चाहिए। कुल मिला कर आपको कुछ भी कहने से पहले सरकार और उसके सड़क छाप लम्पटों की अनुमति लेनी अनिवार्य है। अभिव्यक्ति की आजादी का अर्थ यहीं तक सीमित कर दिया गया है।

हम इस फर्जी राष्ट्रवाद के सामने नहीं झुकेंगे

मैं पिछले 20 साल से बच्चों को पढ़ा रहा हूँ। मैं एक मुसलमान हूँ, यह बात हरदम मेरे दिमाग में घूमती रहती है।

पिछले कुछ सालों से हमारे देश पर एक फर्जी राष्ट्रवाद का भूत सवारी गाँठ रहा है और असली देशभक्तों को ठिकाने लगाने पर आमादा है। हमारे देशभक्त होने की परिभाषाएँ बहुत नीचे गिरा दी गयी हैं। हमारी देशभक्ति का पैमाना गले में विशेष गमछा डाले उपद्रवी तय करने लगे हैं। एक विशेष धार्मिक नारे के उच्चारण से हमारी भारतीयता तय की जाने लगी है। मुझे लगता है कि भविष्य में नौकरी पाने, मेडिकल या अन्य सरकारी सुविधाओं वाले आवेदन पत्रों से राष्ट्रीयता का कॉलम हटाकर वहाँ यही नारा लिख देना चाहिए।

दरअसल हमने आज तक राष्ट्रवाद की यही सीधी परिभाषा सीखी थी--

अपने देश के प्रति वफादारी, संविधान में लिखी बातों का पालन करना, कश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ से अरूणांचल तक बसे सभी भारतीयों को एक समझना, किसी भी रूप में देश के यानी देश की जनता के हितों को सबसे ऊपर मानकर सेवा करना।

1947 से ही हमें यह बातें कर्तव्य बताकर घोट-घोटकर पिलायी गयीं और हमने इनका पालन किया। हालाँकि नकली देशभक्तों को फिर भी इस देश के मुसलमानों की वफादारी पर शक रहा। आतंकवाद के फर्जी आरोप लगाकर कितने ही मुसलमानों को 10-20 साल जेलों में सड़ाया गया और कोई सबूत न मिलने पर बाइज्जत रिहा किया गया। जाने किस शक के चलते सेना में उनके नाम की कोई रेजिमेंट नहीं बनायी गयी। इसके वाबजूद सैंकडों अब्दुल हमीद इस देश पर कुर्बान हुए।

2014 से फर्जी राष्ट्रवाद की बेशर्मी खुलेआम हो रही है। इस आतंकवादनुमा राष्ट्रवाद ने तीन आवरण गढ़े हैं जिन्हें लगभग सरकारी संरक्षण प्राप्त है-- गाय, जय श्री राम, धर्मान्ध हिन्दुत्व। इसकी आड़ में मई 2015 से दिसम्बर 2018 तक 12 राज्यों में कम से कम 44 लोगों की हत्याएँ की जा चुकी हैं जिसमें 36 मुसलमान हैं। इसी दौरान 20 राज्यों में 100 से अधिक अलग-अलग घटनाओं में करीब 280 लोग घायल हुए। (ह्यूमन राइट्स वाच) 18 मार्च 2016 को गौ आतंकियों के एक समूह ने दो मुस्लिम चरवाहों की हत्या कर दी। झारखण्ड निवासी 35 वर्षीय मजलूम अंसति और 12 वर्षीय इम्सियाज खान को मारकर शवों को पेड़ों से लटकाया गया था। एक सर्वेक्षण कहता है कि पहले पाँच साल के मुकाबले 2014 से 2018 के बीच सत्ता में चुने गये नेताओं के भाषणों में साम्प्रदायिक भाषा के उपयोग में लगभग 500 प्रतिशत बढ़ोतरी हुई है।

इस फर्जी राष्ट्रवाद का शिकार अल्पसंख्यकों के अलावा दलित और प्रगतिशील बुद्धिजीवी भी हो रहे हैं। गुजरात में दलितों को नंगा करके पीटा गया। हरियाणा में जबरन दो युवकों को गोबर खिलाया और मूत्र पिलाया गया। हरियाणा में ही घर में गोमांस खाने के आरोप में दो महिलाओं का बलात्कार किया गया और दो पुरुषों की हत्या कर दी गयी। सितम्बर 2015 में गौ आतंकियों ने उत्तर प्रदेश में 50 वर्षीय अखलाक की हत्या की।

भारतीय संगठन फैक्ट चैकर के सहयोगी हेट क्राइम ब्रांच ने जनवरी 2009 और अक्टूबर 2018 के बीच धार्मिक अल्पसंख्यकों पर हमलों की 254 घटनाएँ दर्ज कीं जिनमें कम से कम 91 लोग मारे गये और 579 घायल हुए इनमें 90 प्रतिशत हमले 2014 के बाद हुए।

अप्रैल 2017 में राजस्थान में गौ आतंकियों ने 55 वर्षीय दूध उत्पादक किसान पहलू खान की हत्या कर दी। झारखण्ड में 2017 में गौ आतंकियों द्वारा अलीमुद्दीन अंसारी की हत्या की गयी। दिसम्बर 2018 में यूपी के बुलन्दशहर में गौ आतंकियों ने एक पुलिस स्टेशन में आग लगा दी और पुलिस अधिकारी सुबोध कुमार सहित दो लोगों की हत्या की। 2018 में यूपी के हापुड़ में कासिम को गौ आतंकियों द्वारा मारा गया जिसमें पुलिस भी शामिल थी। मार्च 2016 में हरियाणा के कुरुक्षेत्र में गौ आतंकियों द्वारा मस्तान को मारा गया।

इन इनसानों की हत्याएँ गाय नामक पशु के नाम पर हुई। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के नाम का या उनके जयकारों का उपयोग राष्ट्रवादी आतंकी लोगों की जान लेने के लिए करने लगे। भारत जैसे देश में जहाँ राम-कृष्ण सबके हैं जिन्होंने खुद मानवता को सन्देश दिया हो, उनके नाम का इस्तेमाल हत्या जैसे जघन्य अपराधों में इससे ज्यादा धर्म विरोधी काम क्या हो सकता है।

मैं कई मुसलमानों को अपने काम की शुरुआत राम के नाम से करते देखता था तो गर्व महसूस होता था कि हमने राम की भूमि पर जन्म लिया। हम बचपन से राम को एक परिवारिक खुदा की तरह देखते थे। उनकी लक्ष्मण, सीता और हनुमान के साथ मुस्कुराती फोटो आती थी जो बहुत अच्छी लगती थी। अब धनुष

पर तीर चढ़ाये उनका गुस्सैल फोटो देखकर डर लगता है। अब यदि कहीं जय श्री राम का जयकारा सुनायी देता है तो लगता है किसी की हत्या हो गयी हो। गौ आंतकियों द्वारा की गयी सभी हत्याओं में जय श्री राम का उद्घोष किया गया था। जैसे कठमुल्ला आतंकवादी अल्लाह हु अकबर का उद्घोष किसी की हत्या करने में करते हैं। मुझे अब दोनों एक जैसे लगने लगे हैं। दोनों से एक जैसा डर लगता है।

कोरोना काल की शुरुआत में मुझे अन्दाजा भी नहीं था कि भारत जैसे देश में इसका ठीकरा मुसलमानों पर फोड़ा जायेगा। लेकिन यहाँ के सत्ताधारी लोगों ने राष्ट्रवाद को निराश न करते हुए मुस्लिम जमातियों पर इल्जाम लगाये और प्रशासन ने काईवाई करते हुए जमात में शामिल सभी को जेलों में भी ठूसा। इसकी आड़ में राष्ट्रभक्तों ने गरीब मजलूम मुसलमानों को पीटने का जो खेल शुरू किया और वह भी श्री राम के उद्घोष पर, वह बहुत घिनौना था। समझदार हिन्दू इन हरकतों से कितना शर्मसार होते होंगे।

अब तो गले में विशेष गमछा डाले आतंकी लगभग हर किसी को जय श्री राम बोलने पर मजबूर करने लगे हैं। इन लम्पटों ने भगवान को भी अपने मातहत बना लिया। शायद इन्हीं के दबाव में सुप्रीम कोर्ट के जज ने सबसे विवादित स्थल का न्याय करते हुए बहुसंख्यक समाज की भावनाओं का ख्याल रखने की बात कही थी। आप सोचिये अगर कोई किसी की हत्या करता है और ज्यादा आदमी लाकर कोर्ट में कहे हमारी भावनाएँ हत्यारे के साथ हैं तो क्या आप उनके हक में फैसला देंगे? शायद नहीं। न्याय प्रणाली सबूतों के आधार पर चलती है, भावनाओं पर नहीं।

न्याय की क्या बात करें जब नागरिकता पर ही सवाल उठने लगे हों। अब तो हर रोज खुलेआम कहा जाता है जो जय श्री राम बोलेगा उसे ही भारतीय माना जायेगा। इस देश का संविधान सभी को अपने धर्म का पालन, प्रचार और प्रसार का हक देता है। बेशऊर लोग न्याय व्यवस्था का सरेआम अपमान करें, किसी भी भारतीय को पाकिस्तान जाने का आदेश दें, इसे मैं पसन्द नहीं करता। तुम जबरदस्ती जय श्री राम और गाय हत्या की राजनीति करके लोगों की नागरिकता का पैमाना तय करोगे। लोगों के चूल्हों पर चढ़े पतीलों में झाँककर तुम तय करोगे कि उसे क्या खाना है? लोगों के बाथरूमों में घुसकर तुम फैसला करोगे, उसे कच्छा-टॉवल लपेटकर बदलना चाहिए? तुम कौन हो जो मेरे मुस्लिम नाम से चिढ़कर मुझसे जबरन राम का नारा लगवाओगे? तुम कौन हो जिसके कहने से मैं अपना खाना बदल लूँ? तुम कौन हो जो मेरे पहनावे पर उँगली उठाओ? तुम कौन हो जो मेरी शरिअत में दखलदांजी करो?

वास्तव में तुम बेशऊर लोग हो, उपद्रवी हो, आतंकवादी हो। तुम मुझे या मेरे देश को बनाने वाले नहीं हो। मैं तुम्हें बर्दाशत नहीं करूँगा। मैं तो क्या खुद समझदार हिन्दू भी तुम्हें बर्दाशत नहीं कर सकते।

अगर मेरे ऊपर मेरा धर्म जबरदस्ती थोपा जाएगा तो मैं उसे भी बिलकुल नहीं मानूँगा। ये तुम्हारा लम्पट राष्ट्रवाद तो बहुत छोटी चीज है। अपने अब तक के 20 साल के शैक्षणिक कार्यकाल में मुझे अब तक नहीं लगा कि कोई मेरी नागरिकता पर भी प्रश्नचिन्ह लगा सकता है। लेकिन पाकिस्तान चले जाओ जैसे शब्द अब आये दिन सुनने को मिल रहे हैं। यह चलने वाला नहीं है। मुठ्ठीभर लम्पट दुनिया की दिशा नहीं मोड़ सकते जो दुनिया यहाँ पहुँच चुकी है कि अपनी पत्नी की सहमति के बिना सम्भोग बलात्कार माता जाता है। उस दुनिया में सवा अरब लोग तुम्हारी तानाशाही ज्यादा दिन बर्दाश्त नहीं कर सकते। इस मुल्क से तुम्हारी विदाई के दिन तक मेरी आँखें जरूर खुली रहेंगी।

--मो. इरफान सिद्दकी

'याद था हमें एक-एक क्षण
आरम्भिक पाठों का
राम, पाठशाला जा
राधा, खाना पका!
राम, आ बताशा खा
राधा, झाड़ू लगा!
भैया अब सोएगाा
जाकर बिस्तर बिछा!
अहा, नया घर!
देख राम, देख यह तेरा कमरा है।
'और मेरा?' 'ओ पगली,
लड़कियाँ, हवा, धूप, मिट्टी होती हैं
उनका कोई घर नहीं होता।'
कुछ प्रश्न पीछे पड़े थे, वे भी छूटे!
छूटती गयीं जगहें...
चाहती नहीं लेकिन
कोई करने बैठे,
मेरी व्याख्या सप्रसंग...'

-- अनामिका

उत्तर-आधुनिकतावाद और मौजूदा व्यवस्था के कुतर्क

(पूँजीवादी राजनीतिक प्रबन्धकों का तिकड़म, साम्राज्यवादी तबाही पर पर्दा डालने की एक घिनौनी कोशिश)

-सोनू पवांर

उत्तर आधुनिकतावादी विचारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मध्य युग में सामन्तवादी शोषण से पीड़ित जनता ने सामन्तवाद के विरुद्ध विद्रोह की अलख जगा दी थी। चर्च की निरंकुशता चरम पर पहुँच चुकी थी। चर्च स्वर्ग के लिए टिकट भी देने लगा था। यूरोप के लगभग चौथाई हिस्से पर चर्च का कब्जा था। दशमांश की लूट से किसान भयावह पीड़ित थे। अन्धविश्वास का बोलबाला था। राजा खुद को भगवान का पुत्र बताता था। राजा चर्च के अनुसार चलता था। चर्च स्वयं में प्रभु था। जमीन से बेदखल कर दिये गये मेहनतकश लोगों की जिन्दगी बहुत पीड़ादायक थी। रोटी, सड़े गले मकान, सामन्ती मूल्य-मान्यताएँ जैसी तमाम समस्याएँ उनकी जिन्दगी को बहुत बदहाल बना दे रही थीं। उनके लिए जीविका का संकट प्रधान था। लियो हयूबरमन ने अपनी पुस्तक *मनुष्य की भौतिक सम्पदाएँ* में इसका बहुत स्पष्ट विवरण प्रस्तुत किया है।

एक समय ऐसा आया जब सामन्ती व्यवस्था चौतरफा संकट की गिरफ्त में आ गयी। उभरता व्यापारी वर्ग (बुर्जआ वर्ग का पूर्ववर्ती) व्यापार के लिए दूर इलाकों तक जाता था। दूर-दराज घूमने से उसकी चेतना के क्षैतिज का निरन्तर विस्तार हो रहा था। वह तमाम तरह की सांस्कृतिक, सामाजिक और कलात्मक अभिरुचियों से रूबरू होता जा रहा था। उसके पास निजी सम्पत्ति इकट्ठी हो रही थी। उत्पादन की अधिकता में उसे लाभ नजर आ रहा था। नये-नये बाजारों की उपलब्धता ने उत्पादन की माँग को बहुत तेज कर दिया था। शासन व्यवस्था पर सामन्ती प्रभुत्व कायम था जो सम्पूर्ण समाज व्यवस्था को जकड़े हुए था। चुगिंयों और करों के रूप में व्यापारी वर्ग से सामन्त काफी बड़ी रकम की वसूली कर रहे थे। व्यापारी वर्ग के लिए सामन्तवादी बेडियाँ बुनियादी अन्तरविरोध थीं। उत्पादन शक्तियाँ सामन्तवादी व्यवस्था से अधिक विकसित हो चुकी थीं। ऐसे वक्त में आधुनिकता का उदय हुआ। स्वंतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व के झण्डे तले अवाम एकजुट होती गयी। नये सामाजिक अनुबन्ध तैयार हुए। नयी-नयी वैज्ञानिक खोजों का सिलसिला बढ़ता गया। पृथ्वी दुनिया के केन्द्र में नहीं है, खगोलविदों ने यह साबित कर दिया (इस मामले में गिर्दानो ब्रूनों के बलिदान को नहीं भुलाया जा सकता)। चर्च दुनिया की सचांलक शक्ति है, इस पर सवाल उठने शुरू हो गये। रूसो, दिदेरो, वाल्तेयर और मांतेक्स्यू ने लोकतन्त्र की प्रस्थापना प्रस्तुत किया। इस संघर्ष में उभरते व्यापारी वर्ग ने मेहनतकश जनता को साथ लेकर सामन्तवाद के विरुद्ध विद्रोह की अलख जगायी। यह पूँजीवाद की शुरुआती अवस्था थी और तर्क प्रधानता को समाज में स्थापित करने का दौर था। यह एक पुरातन व्यवस्था के विरुद्ध नवीन व्यवस्था की शुरुआत थी। इससे सामाजिक बन्धनों, रीति-रिवाजों, सास्कृतिक, आर्थिक, तकनीक आदि सभी क्षेत्रों में आमूलचूल परिवर्तन ने गति पकड़ी। एक नयी व्यवस्था के जन्म के साथ आधुनिकतावाद आया। फ्रांस इस संघर्ष की जन्म-भूमि थी, जहाँ से यह अमरीका, इंग्लैण्ड और यूरोप के बाकी देशों में फैला। सभी धीरे-धीरे अपनी सामन्ती गुलामी की बेड़ियों को तोड़कर आजाद हो गये। कितनी अजीब और दुखद बात है कि अब यही देश तीसरी दुनिया के देशों को अंधविश्वास, अज्ञानता, धार्मिक कट्टरपंथ और अवैज्ञानिकता जैसे पुरातनपंथ तथा सामन्ती विचारों की ओर धकेल रहे हैं।

औद्योगिक व्यवस्था और तर्कसगंकता, धर्मनिरपेक्षता, नौकरशाही, व्यक्तिवाद जैसे विचारों का उदय हुआ। आधुनिकतावाद दुनिया में मध्य-युग के समापन और पूँजीवाद के उदय के साथ प्रारम्भ हुआ। उद्योगों का मशीनीकरण होने लगा और दुनिया में सामन्ती व्यवस्था की अपेक्षा उत्पादन का स्तर बहुत तीव्र गति से बढ़ने लगा। निजी पूँजी का आकार दिनोंदिन बढ़ा। पूँजीवाद की अन्तरवस्तु निजी पूँजी संचय और मुनाफे ने दुनिया पर वर्चस्व स्थापित कर लिया। दुनिया में नये बाजारों और कच्चे माल की तलाश के लिए त्राहि-त्राहि तथा लूट-खसोट ने तीसरी दुनिया और लातिन अमरीका के देशों को उपनिवेशों में तब्दील कर भयावह गर्त में पहुँचा दिया। एदुआर्दो गालेआनो ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *लातिन अमरीका के रिस्ते जख्म* में पूँजी की इस नग्न और भयावह

लूट का बहुत स्पष्ट और विस्तृत चित्र प्रस्तुत किया है।

नयी समाज व्यवस्था अपने अन्तरविरोधों के साथ निरन्तर आगे बढ़ती गयी। पूँजी का आकार लगातार बढ़ता गया। अंशतः पूँजीपतियों की आपसी होड़ के कारण और अंशतः तकनीकी विकास के कारण निजी पूँजी कुछ हाथों में केन्द्रित हो गयी। बढ़ते हुए श्रम-विभाजन ने उत्पादन की लघुत्तर इकाइयों की कीमत पर वृहत्तर इकाइयों के निर्माण को प्रोत्साहित किया। उत्पादन के स्तर और मात्रा में तीव्र वृद्धि हुई। पूँजी की बढ़ती लूट ने नये उपनिवेशों के बँटवारे को लेकर दुनिया को दो विश्व युद्धों जैसी त्रासदी झेलने के लिए मजबूर किया। पूँजी और पूँजीवाद का अस्तित्व ही लूट पर टिका था। विश्व-युद्धों के बाद भी पूँजी का आकार लगातार बढ़ता गया जो अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए लगातार नये बाजारों, उपनिवेशों की तलाश करती रही। पूँजी ने इतना विभ्राट रूप धारण कर लिया कि उसने दुनिया का बँटवारा अपने हितों के अनुसार करने के लिए युद्धों को जन्म दिया।

पूँजी के राज में बेकारों की फौज लगभग हमेशा घूमती रहती है। मजदूर हरदम काम छिन जाने से भयभीत रहता है। तकनीकी प्रगति सबके काम का बोझ घटाने के बजाय लगातार और अधिक बेकारी पैदा करती है। प्रतियोगिता का मकसद ही पूँजी के संचय के साथ अस्थिरता को पैदा करना है। पूँजी समाज को उत्तरोत्तर गहन महामन्दी की ओर ले जाती है। उपभोग में लगभग अराजकता का माहौल बना रहता है।

उत्तर-आधुनिकतावाद की हकीकत

पूँजी चूँकि पूँजीवादी समाज का आधार है इसलिए वह अधिरचना में भी परिवर्तन करती है। 1990 में नव उदारवाद के जरिये तीसरी दुनिया के देशों को आर्थिक रूप से नये उपनिवेश के तहत फिर से गुलाम बना दिया गया। समाज में उपभोक्तावाद को बढ़ावा देना, इनसानी चेतना को मण्डी में तब्दील करना और साम्राज्यवादी संस्कृति का प्रचार-प्रसार करना आज इसका मुख्य उद्देश्य बन गया है। पूँजीवाद को अति-उत्पादन का संकट घेरे हुए है। वह अब अपने महामन्दी और अति-संचय के संकट को हल नहीं कर पा रहा है। व्यवस्था के प्रति लोगों की नफरत से आये दिन कोई न कोई हलचल होती रहती है। उत्तर-आधुनिकतावाद लोगों के असन्तोष को भरमाने का एक सुविचारित प्रयास है। उत्तर-आधुनिकतावाद यह साबित करने का प्रयास कर रहा है कि अब हम पूँजीवादी आधुनिकता से भी अगले चरण में प्रवेश कर चुके हैं। दुनिया अब आधुनिकता की भी अगली और अधिक विकसित अवस्था उत्तर-आधुनिकता के चरण में प्रवेश कर चुकी है।

यह लोगों के बीच मिथ्या प्रचार करता है और उन्हें अगली व्यवस्था में होने का भ्रम बनाने का प्रयास करता है। ताकि लोग इस साम्राज्यवादी तबाही से आँख मूँदकर इसकी नृशंसता को स्वीकार कर लें। उत्तर-आधुनिकतावाद जनप्रिय, उपभोक्तावाद, चयन, खुलापन, अवसर, लोक संस्कृति और संस्कृति का पण्यीकरण, श्रद्धाहीन मिश्रगीत, कृत्रिम गहन शून्यता, मौजमस्ती, खुदवाद, सापेक्षतावाद, अनिश्चिता, विकेन्द्रिता, जीवन इतिहास, व्यक्तिवाद, प्रयोग धर्मिता, उपयोगितावाद, अनेकरूपता, संकेतक, संदेहवाद, विखडंनवाद, असंगत यथार्थ आदि अवधारणाओं के जरिये खुद को स्थापित करता है। दरअसल इस तरह के विचार से आधुनिकतावाद और साम्रज्यावादी व्यवस्था के घाल-मेल की गन्ध आती है, यानी एक ऐसी मानिसकता वाला व्यक्तित्व जो खुद को न आधुनिक माने न पूँजीवादी न साम्राज्यावादी शोषण का समर्थक। बल्कि वह खुद को इन सबसे ऊपर एक नये विचार वाले व्यक्ति के रूप में उत्तर-आधुनिक होने का दावा करें। उत्तर-आधुनिक व्यक्ति साम्राज्यवादी शोषण के खिलाफ भी खड़ा दिखे और पूँजीवाद का पक्ष भी लेता न दिखे और नयी व्यवस्था का भी समर्थक लगे किन्तु समाजवाद के सवाल पर सहमत न हो। यह केवल उसकी नैतिक तटस्थता भर है, परन्तु अन्ततः वह यथास्थिति को बरकार रखने का पक्षधर पूँजीवाद का एक राजनीतिक प्रबन्धक ही होता है। यही उत्तर-आधुनिकता को विकल्प के तौर पर प्रस्तुत करने का साम्राज्यवादी मंसूबा है।

उत्तर-आधुनिकतावाद खाये-अघाये पूँजीवादी बौद्धिक भस्मासुरों की खोखली बौद्धिक कसरत के अलावा कोई ठोस विचार साबित नहीं हो पा रहा है। ये खुद को प्रगतिशील और नयी व्यवस्था के पैरोकार होने का दावा करते हैं और पर्दे की आड़ में साम्राज्यवाद को ही दिनोंदिन जिन्दा रखने के नये-नये मंसूबे गढ़ते हैं। इन सबके बावजूद भी ऐसे बुद्धिजीवी मौजूदा व्यवस्था की उम्र को बढ़ाने में मददगार साबित नहीं हो पा रहे हैं। इस खोखले अर्थशास्त्र के निस्तेजक पूरक के तौर पर उत्तर-आधुनिकतावाद का कमजोर सामाजिक-दार्शनिक सिद्धान्त उपस्थित होता है। जो हमें अपने दैनंदिन जीवन में व्यवस्था के साथ ताल-मेल बैठाने और खुश रहने का उपदेश देता है और उन अभूतपूर्व दैत्यकार विभीषिकाओं की ओर से आँख मूँद लेने के लिए प्रेरित करता है, जो यह व्यवस्था हमारे लिए तैयार कर रही है। इस तरह ,उत्तर-आधुनिकतावाद उन पूँजीवादी राजनीतिक प्रबन्धकों की तिकडमों को अपने तरीके से न्याय संगत ठहराता है जिनके लिए लोकतन्त्र को एक निम्न स्तर की गतिविधि के रूप में सीमित कर दिया जाना चाहिए, भले ही समाज का यह उपकरण ऐसी स्थिति में पहुँचा दिया जाये कि लोगों की नजर में यह लुंजपुंज खोखला और नपुंसक बन जाये।

दुनिया के सबसे निर्धनतम देशों की जनता 100 रुपये से कम पर अपना गुजारा करने को मजबूर है। दूसरी तरफ दुनिया के सबसे अमीर आदमी की दौलत 23 लाख 40 हजार रुपये प्रति मिनट की दर से बढ़ रही है। मौजूदा व्यवस्था में दुनिया की लगभग 72 फीसदी वयस्क आबादी इलाज के अभाव और अज्ञानता की शिकार है। लगभग 4.6 करोड़ लोग प्रतिवर्ष पर्यावरणीय आपदाओं को झेलते हुए मौत के मुँह में समा जाते है। दुनियाभर में लगभग 8.4 करोड़ बेघर लोगों की एक पूरी जमात दर-ब-दर की ठोकरें खाती घूम रही है, जिनके भविष्य का कोई ठिकाना नहीं है। दुनिया में करीब 15.5 करोड़ लोग खाद्य असुरक्षा के भीषण संकट का सामना कर रहे हैं। लगभग 11 लोगों की प्रति मिनट भूख से मौत हो जाती है। दुनिया के 43 देशों की लगभग पौने पाँच करोड़ से अधिक आबादी भयावह अकाल, कगांली और भुखमरी से पीड़ित मौत के मुँहाने पर खड़ी है। भयावह असमानता और पर्यावरण की तबाही, प्राकृतिक संसाधनों की बेतहाशा लूट और बढ़ती ग्लोबल वार्मिंग से पृथ्वी एक दहकते हुए गोले में तब्दील होने के कगार पर है। 'जलवायु आपातकाल' घोषित किया जा चुका है। परमाणु परीक्षण, युद्ध सामग्रियों की अंधी प्रतियोगिता, वित्तीय पूँजी का बढ़ता वर्चस्व जिसने पूरे समाज को जुआरी बना दिया है। मध्य पूर्व का बहुत बड़ा हिस्सा लम्बे समय से गृह युद्ध की आग में जल रहा है। वहाँ दुधमुँहें बच्चे सिसक-सिसक कर मर रहे हैं। तीसरी दुनिया के देशों पर भयावह कृषि और खाद्य संकट मँडरा रहा है। पूरी व्यवस्था ढाँचागत संकट की गिरफ्त में है। दुनिया भर के अमीरों को व्यवस्था के ढह जाने का डर दिन-रात सता रहा है। उत्तर-आधुनिकता जैसे खोखले दार्शनिक विचारों से शासक वर्ग कुछ समय के लिए इस डर का सामना कर लेते हैं। लेकिन यह खोखला दार्शनिक सिद्धान्त स्थायी समाधान प्रस्तुत नहीं कर सकता।

उत्तर-आधुनिकतावाद मानवजाति द्वारा अर्जित भौतिक सम्पदाओं के इतिहास और तर्क का खण्डन करते हुए यह साबित करने का प्रयास करता है कि दार्शनिकों और इतिहासकारों द्वारा लिखे गये मत केवल उनके द्वारा अर्जित तथ्यों का सार भर है। यह बात मौजूदा शासक वर्ग को बहुत रास आती है क्योंकि इस मत में वह अपना वर्ग-हित देखता है। उत्तर-आधुनिकतावाद का विचार भी मौजूदा शासक वर्ग की ही सेवा करता है। "इतिहास जैसा कुछ भी मौजूद नहीं है" उत्तर-आधुनिकतावाद इस तर्क की दलील देता है और यथास्थिति को चिरन्तन साबित करता है। जबकि सच्चाई इसके विपरीत है। मनुष्य ने आदिम समाज से मौजूदा समाज व्यवस्था तक एक लम्बी संघर्ष भरी यात्रा के दौरान अथक श्रम से मौजूदा दुनिया की रचना की है। विराट बौद्धिक सम्पदा हासिल की है। ज्ञान को विकसित किया है। प्रकृति और समाज में मौजूद तमाम चीजों के पैदा होने की एक लम्बी द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक प्रक्रिया है जो तर्क और तथ्यों पर आधारित है। मेहनतकश वर्ग का संघर्ष निरन्तर जीवन को बेहतर बनाने की ओर रहा है। समय-समय पर आये विभिन्न अन्तरविरोधों को मेहनतकशों ने बड़ी कुशलता और आत्मबलिदान से हल किया है। मानव-समाज निरन्तर प्रगतिशील है। गति प्रकृति का सार्वभौम नियम है। पुराने का खात्मा और नये का अविष्कार प्रकृति की एक अनिवार्य प्रक्रिया है। विरोधी चीजों के बीच संघर्ष और एकता से प्रकृति लगातार विकसित हो रही है। समाज व्यवस्था भी प्रकृति का ही विस्तृत रूप है जो निरन्तर गतिमान है। मौजूदा व्यवस्था में अन्तरनिहित कमजोरियाँ और इसके विरोधाभास इस बात को साबित करते हैं कि यह व्यवस्था टिकाऊ नहीं है।

आज जनपक्षधर प्रगतिशील लोग पूँजीवाद के अन्तर्गत सामाजिक अस्तित्व के स्वसंचालित, प्रथक और असम्बद्ध प्रतीत होने वाले खण्ड-खण्ड साहित्य, कला, राजनीति, आर्थिक व्यवस्था, विज्ञान, संस्कृति और लोगों की मानसिक अवस्था, इस सब को केवल तभी समझ सकते हैं, जब वे उन्हें ऐतिहासिक प्रक्रिया की समग्र सम्पूर्णता के हिस्से के रूप में स्पष्ट रूप से देखें। हमें मनुष्य के स्वास्थ्य, विकास और खुशहाली की प्रकृति, उसे हासिल करने के साधन और उसके लिए जरूरी परिस्थितियों पर चर्चा के दौरान असहमतियों, बहसों और तार्किक विश्लेषण और समाधान के माहौल को तैयार करने के काम में पूरी ऊर्जा के साथ लग जाना चाहिए। यह मानवता के विकास के लिए अपनी व्यक्तिगत खुशहाली पर मँडराने वाले खतरों का बहादुरी से सामना करने और अपने निजी स्वार्थों से ऊपर समाज के हितों को रखने की जीवन शैली को खुले दिल से स्वीकार और प्रचारित करने का वक्त है। इसके लिए आज हमें अधिक साहस, अधिक सत्यनिष्ठा और अधिक क्षमता की जरूरत है जो सभी प्रभुत्वशाली स्वार्थों, अज्ञेयवाद, निराशावाद और अमानवीयता के सभी हमलों के खिलाफ हमारे उसूलों और मानवता की गरिमा की हिफाजत करेंगे।

(इस लेख की सामग्री नोम चोमस्की, अरुन्धति राय आदि विचारकों के लेखों से ली गयी है।)

कभी नहीं माँगी बालिश्त भर जगह
नहीं माँगा आधा राज
माँगा है सिर्फ न्याय
जीने का हक
थोड़ सा पीने का पानी

-- ओमप्रकाश बाल्मिकी

विशेष लेख

रूस-चीन धुरी और अमरीकी खेमे के बीच बढ़ती दुश्मनी के भावी परिणाम

-- विक्रम प्रताप

फरवरी के अन्तिम सप्ताह में 'फॉरेन पॉलिसी जरनल' ने एक लेख छापा-- "वाशिंगटन मस्ट प्रीपेयर फॉर वार विद बोथ रशिया एण्ड चाइना"। इसके लेखक मैथ्यू क्रोएनिग 'स्कोक्राफ्ट सेन्टर फॉर स्ट्रेटेजी एण्ड सिक्यूरिटी-अटलांटिक काउंसिल' के लिए काम करते हैं और अमरीका द्वारा रूस और चीन की घेरेबन्दी की वकालत करते हैं। उनका मानना है कि यूक्रेन में बड़े स्तर पर युद्ध होने की स्थिति में इसकी सीमा से लगे सात नाटो देशों पर खतरा बहुत बढ़ जायेगा तथा रूसी हमले के अगले निशाने-- पोलैण्ड, रोमानिया या तमाम बाल्टिक राष्ट्र होंगे। अमरीकी सेना के पूर्व कमाण्डर फिलिप डेविडसन जो भारत-पाक कमाण्ड से हैं, उनका मानना है कि "चीन अगले 6 वर्षों में ताइवान पर कब्जा कर सकता है...यदि चीन ताइवान पर नियन्त्रण कायम करने में सफल हो जाता है, तो वह अमरीकी नेतृत्व वाली एशियाई व्यवस्था को खतरा पहुँचाकर उसे कमजोर कर देगा।" इन तथ्यों से लगता है कि अमरीकी रणनीतिकार मानते हैं कि जो महत्त्व रूस के लिए यूक्रेन का है, वही महत्त्व चीन के लिए ताइवान का है और दोनों ही मामलों में अमरीकी प्रतिष्ठा दाँव पर लगी हुई है।

पिछले तीस सालों के शान्तिपूर्ण नव उदारवादी दौर के बाद तथा कोरोना महामारी का आघात झेल रही दुनिया के सामने अमरीकी खेमे के साथ रूस-चीन धुरी की बढ़ती दुश्मनी एक नया खतरा पैदा कर रही है। तीस साल पहले रूस और चीन इस हालत में नहीं थे कि वे अमरीका को कहीं से भी चुनौती दे सकें। लेकिन आज ऐसा नहीं है। वे हर जगह अमरीकी मंसूबों की राह का रोड़ा बन रहे हैं।

साम्राज्यवादी देशों के बीच गँठजोड़ (कोल्यूजन) और तनाव (कन्टेंशन) के सम्बन्ध हमेशा बने रहते हैं। किसी समय इसमें एक पहलू सतह पर होता है, लेकिन दूसरा पहलू गायब नहीं हो जाता। गँठजोड़ का पहलू तब प्रधान हो जाता है, जब वे मिल-बैठकर शान्तिपूर्ण तरीके से अपने अन्तरविरोध हल कर लेते हैं, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि उसमें धौंसपट्टी या ताकत का इस्तेमाल नहीं होता। लेनिन ने काउत्स्की के अतिसाम्राज्यवाद के सिद्धान्त का जोरदार खण्डन करते हुए कहा था कि "... पूँजीवादी व्यवस्था की वास्तविकताओं में "अन्तर-साम्राज्यवादी" या "अति साम्राज्यवादी गँठजोड़-- उनका रूप चाहे कुछ भी हो, चाहे एक साम्राज्यवादी गँठजोड़ के खिलाफ दूसरे साम्राज्यवादी गँठजोड़ के रूप में हो या **सभी** साम्राज्यवादी ताकतों के आम गँठजोड़ के रूप में-- अनिवार्यतः युद्धों के बीच में "युद्ध-विराम" से ज्यादा कुछ भी नहीं होते। शान्तिपूर्ण गँठजोड़ युद्धों के लिए जमीन तैयार करते हैं और स्वयं भी इन्हीं युद्धों में से उत्पन्न होते हैं, एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं और विश्व अर्थव्यवस्था तथा विश्व राजनीति के भीतर साम्राज्यवादी बन्धनों तथा सम्बन्धों के **उसी एक** आधार में से संघर्ष के शान्तिपूर्ण तथा अशान्तिपूर्ण रूपों को बारी-बारी से जन्म देते हैं।"

साम्राज्यवादी देश अपनी सामरिक, आर्थिक, रणनीतिक और वैचारित-सांस्कृतिक ताकत के दम पर ही दूसरे गैर-साम्राज्यवादी और कमजोर देशों को अपने मातहत कर लेते हैं। आर्थिक नव-उपनिवेशवादी दौर में मातहती थोपने के लिए आर्थिक, वैचारिक और सांस्कृतिक तौर-तरीकों पर मुख्य जोर होता है, जबकि सामरिक और राजनीतिक तौर-तरीके गौण बने रहते हैं। आर्थिक रूप से पिछड़े देशों के ऊपर वित्तीय साधनों और उन्नत तकनीकों के जरिये औपनिवेशिक गुलामी की शर्तों को थोपा जाता है, जो इन देशों की जनता के लिए सहज, स्वभाविक और अधिक ग्राह्य होता है। पुराने औपनिवेशिक और नव-औपनिवेशिक देशों ने मुक्ति संघर्षों के जरिये अपनी आजादी हासिल तो कर ली, लेकिन वे उसे बरकरार न रख सके और शीघ्र ही अमरीकी प्रभुत्व वाली नयी आर्थिक गुलामी के चंगुल में फँस गये। यह गुलामी उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण की नीतियों के जरिये पिछड़े देशों पर थोपी गयी और साम्राज्यवादी देशों ने इन देशों में पूँजी निवेश करके तथा उन्नत तकनीकी के जरिये अकूत मुनाफा कमाया। इन देशों को लूटकर कंगाल बना दिया गया। इन देशों के बुर्जुआ वर्ग और उनके शासकों ने इस काम में साम्राज्यवादियों की खुलकर मदद की। इन देशों का आर्थिक विकास बुर्जुआ वर्ग के लिए स्वर्ग के दरवाजे खोल रहा है, जबकि बहुसंख्यक जनता के लिए वह नरक का निर्माण कर रहा है।

ऐसे कमजोर देश जो अमरीकी दादागिरी के आगे नहीं झुके,

जैसे-- अफगानिस्तान, इराक, सीरिया, लीबिया, सोमालिया आदि उन्हें अमरीकी हमले के जरिये बरबाद कर दिया गया या ईरान की तरह आर्थिक प्रतिबन्ध लगाकर बरबाद करने की कोशिश की गयी। इस दौरान, विरोध और असहमतियों के बावजूद, कोई भी साम्राज्यवादी देश अमरीकी दादागिरी को खुली चुनौती देने और पिछड़े देशों को समर्थन देने के लिए आगे न आ सका, हालाँकि अगर कोई साम्राज्यवादी देश ऐसा करता तो मूलतः अपने फायदे के लिए ही करता। न तो किसी की इतनी जुर्रत हुई कि वह अमरीकी शासकों को अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय में घसीटकर उनके ऊपर युद्ध अपराध का मुकदमा चला सके। अमरीका से दुश्मनी मोल लेने के लिए कोई भी तैयार नहीं हुआ। साम्राज्यवादी देशों के बीच गँठजोड़ (कोल्यूजन) की असलियत यही है।

90 के दशक में अमरीका ने अपनी नयी विश्व व्यवस्था में भूतपूर्व साम्राज्यवादी देशों इटली, फ्रांस, जर्मनी, जापान, ब्रिटेन... आदि को लूट के बँटवारे में उचित हिस्सा दिया। हालाँकि इनका अमरीका के साथ अन्तरविरोध भी बना रहा, लेकिन किसी में खुलकर विरोध करने की हैसियत नहीं थी। रूस और चीन अमरीकी चौधराहट वाली विश्व व्यवस्था के दो अपवाद साबित हुए। इनकी सबसे खास बात यह है कि दोनों ही देश पहले समाजवादी थे और पुनर्स्थापना के जरिये पूँजीवादी बने हैं। इसके चलते इन देशों की एक अलग राष्ट्रीय संस्कृति बन गयी है, जो पश्चिम की साम्राज्यवादी संस्कृति से टकराती है। इसे सामाजिक अन्धराष्ट्रवादी कहना अधिक उपयुक्त होगा। वर्तमान में पूँजीवादी व्यवस्था के अन्दर जीवन-यापन करना तथा अपने गौरवशाली समाजवादी अतीत और कभी महाशक्ति होने पर गर्व करना इस संस्कृति के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इस संस्कृति को जरूरत के हिसाब से इन देशों के शासक वर्ग प्रोपागेण्डा के जरिये भुनाते हैं और अपनी सत्ता की वैधता के लिए उसका इस्तेमाल करते हैं। इसने पश्चिम के साम्राज्यवादी देशों के खिलाफ जनता में एक अन्धराष्ट्रवादी रुझान पैदा किया है। इसलिए अपनी साम्राज्यवादी शक्ति को संजोने के घमण्ड में चूर पुतिन ने जब यूक्रेनी जनता के ऊपर बम बरसाया तो रूस की बहुसंख्यक जनता ने पुतिन को अपना समर्थन दिया। सामाजिक अन्धराष्ट्रवादी संस्कृति की दूसरी विशेषता है-- पश्चिम के नकली बुर्जुआ लोकतंत्र से नफरत। इन देशों का इतिहास साम्राज्यवादी-पूँजीवादी व्यवस्था के खिलाफ प्रतिरोध का रहा है। इसलिए दोनों देशों के शासक वर्ग जब पश्चिम के खिलाफ और खासतौर से अमरीका के खिलाफ अपनी दुश्मनी का इजहार करते है, तो उन्हें अपनी जनता का भरपूर समर्थन मिलता है। ऐसा जन समर्थन अमरीका के खिलाफ शायद ही इंग्लैण्ड, फ्रांस और इटली के शासक वर्ग को मिल पाये क्योंकि इन देशों की जनता खुद को अमरीका से जोड़कर देखती है तथा पश्चिम की साम्राज्यवादी संस्कृति के प्रभाव में है। यही स्थिति पश्चिमी जर्मनी की भी है, हालाँकि पूर्वी जर्मनी की स्थिति इससे भिन्न है। इसके पीछे पूर्वी जर्मनी का समाजवादी अतीत और रूस के साथ उसका बिरादराना रिश्ता रहा है। जर्मनी अपनी विदेश नीति में डाँवाडोल स्थिति प्रदर्शित करता रहा है और ऐसा सम्भव है कि अगर वहाँ कब्जा जमाकर बैठी अमरीकी सेना निकल जाये तो सम्भवतः वह अपनी स्वतंत्र विदेश नीति तय कर सके या रूस-चीन खेमे की ओर झुक जाये।

आज के दौर में किसी भी छोटे से छोटे देश पर कब्जा करके उसे सीधे उपनिवेश बनाये रखना सम्भव नहीं है। अफगानिस्तान और इराक इसके ताजा उदाहरण हैं। इसलिए किसी भी देश को आर्थिक रूप से उपनिवेश बनाने के लिए साम्राज्यवादी देशों के पास बड़ी मात्रा में वित्तीय पूँजी होनी चाहिए और इसके साथ ही उसके पास कम से कम किसी एक-दो क्षेत्रों में तकनीकी महारत भी होनी चाहिए। इसके अलावा उपनिवेश बनाये रखने में सामरिक ताकत का होना भी जरूरी है, हालाँकि वह कभी-कभी ही इस्तेमाल होती है, लेकिन कई बार निर्णायक भूमिका निभाती है। साम्राज्यवादी देशों द्वारा अपनी नीतियों को आगे बढ़ाने के लिए अपने देश की जनता का समर्थन भी बेहद जरूरी है यानी जनता को इसके लिए तैयार करना जरूरी होता है। यह लक्ष्य मीडिया के जरिये प्रसारित की जा रही साम्राज्यवादी संस्कृति और विचारधारा से हासिल किया जाता है।

किसी भी साम्राज्यवादी देश के अन्दर खुद को महाशक्ति (सुपर पावर) बनाने तथा दुनिया की चौधराहट हासिल करने की स्वभाविक इच्छा होती है, जो उस देश के वर्गीय अन्तरविरोधों की पैदाइश होती है, लेकिन उसकी यह स्वभाविक इच्छा कार्यरूप में रूपान्तरित होगी या नहीं, यह उस दौर की राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों से तय होता है। जैसे-- जी-7 के बाकी किसी भी देश की अकेले दम पर इतनी हैसियत नहीं है कि वह अमरीका को टक्कर देकर दुनिया का चौधरी बन जाये। हालाँकि अमरीका के खिलाफ बाकी 6 देश आपस में मिलकर ऐसा कर पाने की स्थिति में आ सकते हैं। लेकिन ऐसा करते समय उनके बीच के अन्तरविरोध ही इतने तीखे हो जायेंगे कि उनका गठबन्धन टूट जायेगा। इसलिए इन साम्राज्यवादी देशों के पास अमरीकी वर्चस्व को स्वीकार करने के अलावा आज कोई चारा दिखायी नहीं देता। इनसे अलग, अगर रूस-चीन खेमा अमरीका के खिलाफ मजबूत प्रतिद्वन्द्वी बनकर उभरता है तो जी-7 टूट भी सकता है और सम्भावना बन सकती है कि फ्रांस, जर्मनी और इटली में से कुछ देश रूस-चीन खेमे की ओर चले जायें।

अमरीका के खिलाफ रूस-चीन के मजबूत प्रतिद्वन्द्वी बनकर उभरने के महत्त्वपूर्ण कारक हैं-- विशाल भूभाग और प्राकृतिक संसाधनों का विपुल भण्डार, सामाजिक अन्धराष्ट्रवादी संस्कृति, नाभिकीय हथियारों का जखीरा और दूसरे नम्बर की अर्थव्यवस्था। अमरीका के पास दुनिया की जीडीपी का 24 प्रतिशत है, जबकि रूस-चीन के पास सम्मिलित रूप से 19 प्रतिशत है। दुनिया भर

के 13,080 नाभिकीय हथियारों में से 6,255 हथियार रूस के पास और 5,550 हथियार अमरीका के पास हैं। चीन, फ्रांस, यूनाइटेड किंगडम, पाकिस्तान, भारत, इजराइल और उत्तरी कोरिया के पास क्रमशः 350, 290, 225, 165, 156, 90 और 40 हथियार हैं। इस हिसाब से भी रूस-चीन खेमा अमरीका का प्रतिद्वन्द्वी बनने की स्थिति में है। 90 के दशक से अमरीका की कोशिश रही है कि ये अमरीका की मातहती स्वीकार कर लें और नवउदारवादी विश्व व्यवस्था का अंग बन जायें। चीन घुटने टेक दे, इसके लिए अमरीका कोशिश कर रहा है कि उसके मौजूदा नेतृत्व में फेरबदल कराके रंगीन क्रान्ति के जरिये अमरीकापरस्त नेतृत्व कायम किया जाये, हालाँकि यह काम लगभग असम्भव है। दूसरा, चीनी जनता को उसके समाजवादी अतीत से काटकर और उनके बीच साम्राज्यवादी संस्कृति का प्रसार करके उसे अमरीकापरस्त बनाया जाये। इस मामले में मैथ्यू क्रोएनिग (जिनको लेख की शुरुआत में उद्धृत किया गया है।) मानते हैं कि रूस-चीन की घेरेबन्दी से बढ़िया अमरीका के पास कोई और रणनीति नहीं है। इसलिए पूर्वी यूरोप की ओर से नाटो के जरिये रूस की घेरेबन्दी की जा रही है तो दक्षिण चीन सागर में क्वैड (अमरीका, जापान, आस्ट्रेलिया और भारत) का गठबन्धन बनाकर चीन को घेरने की कोशिश चल रही है।

विश्वस्तरीय ताकत के रूप में चीन के उभार के महत्त्वपूर्ण संकेत हैं-- 2013 में ही पर्चेजिंग पॉवर पैरिटी के रूप में चीन की जीडीपी अमरीका से आगे निकल चुकी है और मार्केट एक्सचेंज के रूप में यह 2028 में अमरीका से आगे निकल जायेगी। अमरीका और चीन एक-दूसरे पर आर्थिक रूप से बहुत अधिक निर्भर हैं। चीन अमरीकी कम्पनियों के लिए सस्ते और कुशल श्रम का भण्डार है तो अमरीका चीन के उपभोक्ता मालों का एक बड़ा बाजार है। इसलिए चीन पर किसी भी तरह का आर्थिक प्रतिबन्ध अमरीकी अर्थव्यवस्था के लिए घातक होगा, क्योंकि 2008 की विश्वव्यापी मन्दी के बाद से ही अमरीकी अर्थव्यवस्था चिरन्तन संकट की गिरफ्त में है। लेकिन दोनों देशों की परस्पर निर्भरता के बावजूद यह दावा नहीं किया जा सकता कि इन दो देशों के बीच कभी युद्ध नहीं होगा क्योंकि इतिहास दिखाता है कि एक समय के दो दोस्त बाद में दो सबसे कट्टर दुश्मन में बदल जाते हैं। पुरानी सभी औपनिवेशिक व्यवस्थाओं की तरह आर्थिक नव उपनिवेशवादी व्यवस्था के दो चरण होंगे। पहला, शान्तिपूर्ण चरण जो अभी चल रहा है, जिसमें साम्राज्यवादी देशों के बीच संश्रय का रिश्ता प्रधान है। दूसरा, हिंसक चरण जो आने वाला है जिसमें साम्राज्यवादी देशों के बीच के अन्तरविरोध तीखे होकर दुश्मनी में बदल जायेंगे। साम्राज्यवादी खेमे में दरार और उनके बीच पैदा होनेवाले मनमुटाव इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। अमरीकी शासक वर्ग इन सब बातों से वाकिफ है, इसीलिए वह दक्षिण चीन सागर की ओर से चीन की और पूर्वी यूरोप की ओर से रूस की घेरेबन्दी कर रहा है और उनके खिलाफ प्रोपागेण्डा युद्ध चला रहा है।

अमरीका को यह डर सता रहा है कि अगर कहीं रूस अपने छः हजार नाभिकीय हथियारों के जखीरों में से कुछ की तैनाती यूरोपीय देशों के ऊपर कर देता है, तो इसके दबाव में कुछ यूरोपीय देश रूसी खेमे की ओर झुक सकते हैं। अमरीका चाहता है कि रूस की अर्थव्यवस्था कमजोर बनी रहे, उसकी राजनीतिक स्थिरता खतरे में पड़ जाये, उसकी जनता वैचारिक रूप से विभ्रम की शिकार बन जाये तथा इन सभी का परिणाम यह निकले की रूस दर्जनों भर छोटे-छोटे देशों में टूट जाये और वे अमरीका के सामने समर्पण कर दें। हालाँकि उसकी यह कोशिश 90 के दशक में कामयाब हो गयी थी, जब सोवियत संघ रूस सहित 14 दूसरे छोटे देशों में टूट गया था। उसकी शक्ति कमजोर हो गयी थी और उसमें से कुछ देश नाटो में शामिल हो चुके हैं तथा यूक्रेन अमरीका की ओर झुकता चला गया है। लेकिन पुतिन के नेतृत्व वाले रूस को अब विभाजित करना सम्भव नहीं दिखायी दे रहा है। रूसी जनता के अन्दर राष्ट्रवाद की जो भावना आज दिखायी दे रही है, वह 1812 में रूस पर नेपोलियन के हमले के प्रतिरोध, 1918 में 14 देशों द्वारा सोवियत संघ पर हमले का करारा जवाब और द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान फासीवादी हिटलर की सेना के खिलाफ बहादुराना संघर्ष के दौरान विकसित हुई है। इसके लिए उसने अपनों की जान देकर बहुत बड़ी कीमत चुकाई है। लेकिन रूसी जनता की सकारात्मक देशभक्ति की भावना अब नकारात्मक अन्धराष्ट्रवाद में बदल चुका है और रूसी साम्राज्यवादी शासक वर्ग का एक हथियार बन गया है। हालाँकि इसी के चलते अमरीका द्वारा तमाम तोड़फोड़ की कार्रवाई और आर्थिक प्रतिबन्धों के बावजूद रूस पुतिन के नेतृत्व में मजबूत होता चला गया।

अमरीका द्वारा रूस पर वर्चस्व स्थापित करने की जल्दबाजी ने यूरोप और पूरी दुनिया को युद्ध के दरवाजे पर ला खड़ा किया है। अमरीकी उकसावे पर ही, 2018 में यूक्रेन ने अपने संवैधानिक सुधारों के जरिये नाटो और यूरोपीय संघ की सदस्यता हासिल करना अपना सबसे प्रमुख राष्ट्रीय रणनीति बना दिया। दूसरी ओर अमरीका और पश्चिमी यूरोप की शह पर 2014 में यूक्रेन का नस्लवादी तख्तापलट और रूस से बढ़ती दूरी ने इसे जंग के अखाड़े में तब्दील कर दिया है। इन सब ने रूस की चिन्ता को बेशुमार बढ़ा दिया। अगर यूक्रेन नाटो का सदस्य बन गया होता तो 760 किलोमीटर की लम्बी यूक्रेन-रूस सीमा पर नाटो का वर्चस्व स्थापित हो जाता। इसका साफ मतलब था कि अमरीका के आगे रूस घुटने टेकने के लिए मजबूर हो जाता। इस तरह अमरीका चाहता था कि रूस को झुकाकर उसकी हालत जी-7 के बाकी देशों की तरह कर दी जाये या उसे तोड़कर टुकड़ों में बाँट दिया जाये, लेकिन अमरीका इसमें सफल होता दिखायी नहीं दे रहा है।

अमरीका अपनी विदेश नीति के लिए मुख्य रूप से तीन

संस्थाओं पर निर्भर रहता है। ये संस्थाएँ हैं-- काउंसिल ऑन फारेन रिलेशन (सीएफआर), अटलांटिक काउंसिल (एसी) और सेन्टर फॉर न्यू अमरीकन सिक्यूरिटी (सीएनएएस)। विदेश नीति के मामले में ये तीनों महत्त्वपूर्ण अमरीकी थिंक टैंक हैं। ये तीनों ही रूस और चीन के खिलाफ शीत युद्ध वाला नजरिया रखते हैं। सीएफआर का तो यहाँ तक मानना है कि अमरीका और चीन के सम्बन्ध को दोस्ताना के बजाय दुश्मनाना कहना ज्यादा ठीक है। जब अमरीकी वित्तपतियों को अहसास हो गया कि चीन को सोवियत संघ की तरह विखण्डित नहीं किया जा सकता तो उन्होंने 2007 में सीएनएएस संस्था का गठन किया जिसका मुख्य जोर इस रणनीति पर था कि चीन में अमरीकापरस्त नेतृत्व कायम हो, चीन की घेरेबन्दी की जाये या वहाँ रंगीन क्रान्ति को उकसाया जाये। ओबामा कार्यकाल के दौरान इस संस्था ने एशिया-पैसिफिक इलाके के देशों को चीन के खिलाफ खड़ा करने की रणनीति अपनायी। अटलांटिक काउंसिल अमरीका के सामरिक वर्चस्व के लिए काम करती है। इसने ही सबसे पहले बताया था कि रूस यूक्रेन पर हमला कर सकता है। इस संस्था ने अफगानिस्तान युद्ध, उत्तरी अफ्रीकी देशों में जैसमिन क्रान्ति और हांगकांग के आकुपाई सेन्ट्रल आदि आन्दोलनों में अमरीकी हितों को आगे बढ़ाने के लिए बढ़-चढ़कर काम किया। ये तीनों संस्थाएँ सामरिक, राजनीतिक और कूटनीतिक प्रयासों से अमरीकी वर्चस्व स्थापित करने के लिए काम करती हैं।

ट्रम्प प्रशासन में विदेश मंत्री रह चुके माइक पोम्पियो एक कट्टर इसाई और ट्रम्प से भी बड़े नस्लवादी-फासीवादी हैं जो 2024 के चुनाव में रिपब्लिकन पार्टी की ओर से राष्ट्रपति के उम्मीदवार बन सकते हैं। वे इसी साल मार्च के पहले सप्ताह में ताइवान के दौरे पर गये, जब रूस-यूक्रेन के बीच युद्ध जारी था, वहाँ से उन्होंने ट्वीट किया कि अमरीका को चाहिए कि वह ताइवान को स्वतंत्र और सम्प्रभु देश के रूप में मान्यता दे। इस तरह वे चीन और ताइवान के बीच युद्ध भड़काने में लगे हुए हैं क्योंकि सभी जानते हैं कि चीन इसे कभी पसन्द नहीं करेगा। ऐसा लगता है कि वे अटलांटिक काउंसिल द्वारा प्रस्तावित 'रूस और चीन को एक साथ पराजित करने' की रणनीति को ही आगे बढ़ा रहे हैं।

अमरीका ने रूस की सीमा तक नाटो का विस्तार करके रूस को मजबूर कर दिया कि वह या तो अमरीका के नेतृत्व में नाटो के विस्तार को चुपचाप बर्दाश्त करता रहे और अमरीकी वर्चस्व को स्वीकार कर ले, नहीं तो यूक्रेन के खिलाफ सैन्य कार्रवाई करके अमरीकी हितों को जबरदस्त फायदा पहुँचाये। जाहिर है कि अमरीका जानता था कि रूस द्वारा यूक्रेन पर हमले के बाद अमरीका के हाथ कारू का खजाना लगना तय है। हमले के बाद ऐसा ही हुआ। अमरीकी सत्ता संरचना की कुंजी हमेशा तीन तरह के वित्तीय महाप्रभुओं के हाथ में रहती है-- सैन्य-उद्योग क्षेत्र, तेल-गैस-खनन क्षेत्र और बैंकिंग-बीमा-रीयल स्टेट क्षेत्र। अमरीकी चुनाव में चाहे रिपब्लिकन चुनकर आयें या डेमोक्रेट, सत्ता हमेशा इनके पास रहती है। रूस-यूक्रेन युद्ध के बाद इन्होंने जबरदस्त फायदा उठाया है।

सैन्य-उद्योग के मुख्य एकाधिकारी पूँजीवादी घराने हैं --रेथेन, बोइंग और लॉकहीड मार्टिन। यूक्रेन पर रूसी हमले के तुरन्त बाद इन कम्पनियों के शेयर में उछाल आ गया, क्योंकि इन कम्पनियों में निवेश करने वालों ने भाँप लिया कि युद्ध के माहौल में हथियारों की बिक्री बढ़ जायेगी। यूक्रेन संकट का नतीजा यह हुआ कि न केवल नाटो, बल्कि अमरीका के दूसरे सहयोगी देशों में हथियारों की माँग बढ़ गयी। जर्मनी ने भी सैन्य खर्च को बढ़ाकर जीडीपी का दो प्रतिशत कर दिया।

दूसरे बड़े पूँजीवादी घराने तेल-गैस-खनन क्षेत्र से जुड़े हैं। इस क्षेत्र से जुड़ी कम्पनियों का मुख्य धन्धा दुनिया भर में कच्चे माल और ऊर्जा के साधनों को ऊँचे दामों पर बेचकर मुनाफा कमाना है। यह लॉबी राजनीति पर इतनी हावी है कि इसने ही मध्य एशिया के तेल क्षेत्रों पर कब्जा जमाने के लिए इराक पर अमरीकी हमले को बढ़ावा दिया था। रूस ने धीरे-धीरे यूरोप के तेल-गैस मार्केट में सेंध लगा दी है। वह यूरोप की ऊर्जा जरूरतों के बड़े हिस्से की आपूर्ति अभी तक करता रहा है, लेकिन यूक्रेन संकट के बाद यूरोप के देशों ने रूस से सम्बन्ध तोड़ लिया, इसलिए अमरीकी कम्पनियों के पास सुनहरा मौका है कि वे महँगे दामों पर यूरोप को तेल बेच सकें। अन्तरराष्ट्रीय बाजार में तेल और गैस के दामों में उछाल आने से भी इन्हीं कम्पनियों का फायदा होता है।

अमरीका इन्हीं कम्पनियों के हित में कई बार जर्मनी पर दबाव डाल चुका है कि वह रूस से तेल और गैस लेना बन्द कर दे। नार्ड-स्ट्रीम पाइपलाइन परियोजना जो रूस से जर्मनी के लिए गैस आपूर्ति के लिए बनायी गयी है और जिसे यूक्रेन संकट के बाद जर्मनी ने एकतरफा बन्द कर दिया है, उसके निर्माण में भी अमरीका बाधा पहुँचा चुका है। जो कम्पनियाँ इस पाइपलाइन को बना रही थीं, अमरीका ने उन पर प्रतिबन्ध लगा दिया, अन्त में रूस ने अकेले इस पाइपलाइन के निर्माण को पूरा किया। इसके बाद अमरीका ने दुष्प्रचार किया कि रूस की ओर से यूरोपीय देशों की सुरक्षा को खतरा है और उसने दबाव डाला कि यूरोपीय देश रूस से गैस खरीदना बन्द कर दें, लेकिन रूस द्वारा भेजी गयी सस्ती गैस का यूरोपीय देशों के पास कोई विकल्प नहीं है।

तीसरे बड़े पूँजीवादी घराने वित्त-बीमा-रीयल स्टेट क्षेत्र से जुड़े हैं। ये मध्ययुगीन सामन्तों की तरह बिना कोई मूल्य जोड़े, अकूत कमायी पर जीने वाली परजीवी जमात है। इनकी बैकिंग और

वित्तीय संस्थाएँ न केवल अमरीका बल्कि दुनियाभर में कोने-कोने में फैली हुई हैं। बहुसंख्यक अमरीकी लोग कर्ज लेकर घर बनवाते हैं और कर्ज लेकर उपभोग करते हैं, जिनसे ब्याज निचोड़कर ये कम्पनियाँ अकूत मुनाफा कमाती हैं। वालस्ट्रीट शेयर मार्केट के जरिये दुनियाभर में धन्धा करने वाली ये कम्पनियाँ पिछड़े देशों पर दबाव बनाकर वहाँ की सार्वजनिक कम्पनियों की निजी हाथों (कम्पनियों) बिक्री कराती हैं ताकि इन निजी कम्पनियों को फण्ड देकर अर्थव्यवस्था को अपने नियन्त्रण में लिया जा सके। सैन्य-उद्योग और तेल-गैस-खनन क्षेत्र के शेयरों की खरीद-बिक्री भी वाल-स्ट्रीट के जरिये होती है, इस तरह बाकी के दोनों क्षेत्रों में तेजी से वित्त-बीमा क्षेत्र का मुनाफा भी बढ़ जाता है। इसलिए अमरीका के वित्तीय पूँजीपति यूक्रेन संकट से पैदा हुए वैश्विक तनाव का जमकर फायदा उठा रहे हैं और वे नहीं चाहेंगे कि यह तनाव किसी भी तरह कम हो। इस तरह मैन्युफैक्चरिंग और कृषि क्षेत्र के बजाय ये तीनों क्षेत्र ही अमरीका की घरेलू और विदेश नीति को तय करने में अग्रणी हैं।

अमरीकी पूँजीपतियों की मुट्ठीभर जमातों ने ही रूस को ठेलकर वहाँ पहुँचा दिया, जहाँ से उसके सामने दो ही विकल्प रह गये थे या तो नाटो के सामने आत्मसमर्पण करे या यूक्रेन पर हमला।

रूस का मंशा है कि यूक्रेन पर हमला करके वह उसकी सैन्य काबिलियत को खत्म करना चाहता है और नव-नाजीवादी सरकार को सत्ता से बेदखल करके रूस के समर्थन वाली सरकार स्थापित करना चाहता है। भविष्य बतायेगा कि वह इसमें कितना कामयाब होगा। दूरगामी तौर पर रूस चाहता है कि नाटो के विघटन के साथ ही यूरोप पर अमरीकी वर्चस्व का अन्त हो जाये। इसके अलावा वह एक ऐसी विश्व व्यवस्था बनाना चाहता है, जिसमें डॉलर का प्रभुत्व खत्म हो, आईएमएफ और वर्ल्ड बैंक की जगह उसकी बनायी संस्थाएँ लें और न्यूरेमबर्ग कानूनों पर आधरित एक ऐसा अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय स्थापित करे, जिसमें यूक्रेन के नव-नाजीवादियों सहित अमरीका के युद्धोन्मादी अधिकारियों पर युद्ध अपराध का मुकदमा चला सके। कुल मिलाकर चीन के साथ मिलकर अपनी साम्राज्यवादी महात्वाकांक्षाओं को पूरा कर सके और दुनिया की जनता के शोषण से संचित पूँजी में बड़ा हिस्सा हथिया सके। लेकिन यह यहीं तक रुकने वाला नहीं है, बल्कि आने वाले दिनों में दोनों खेमों के बीच टकराव बढ़ने की पूरी सम्भावना है। साम्राज्यवादी शुरू में शीत युद्ध और छद्म युद्ध लड़ेंगे, लेकिन इस सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि उनके बीच वास्तविक युद्ध भड़क जाये। आखिर हाथियारों के जखीरे कुछ तो करामात दिखायेंगे। अगर ये दोनों खेमे युद्ध में उलझते हैं तो दुनिया को बहुत बड़ी तबाही का मंजर भी देखने को मिल सकता है। इसके साथ ही साम्राज्यवादी एक-दूसरे से लड़कर खुद को कमजोर कर लेंगे। यह सम्भावना निकट आती जा रही है क्योंकि दोनों खेमों के सम्बन्ध अधिकाधिक दुश्मनाना होते जा रहे हैं।

जैसे-जैसे इन दोनों खेमों के बीच टकराव बढ़ता जायेगा, वैसे-वैसे तीसरी दुनिया के पिछड़े देशों के पास इस या उस खेमे में शामिल होने या अपनी विदेश नीति को स्वायत्त रखने की सम्भावना बढ़ जायेगी। इसी के साथ अमरीका के लिए यह अधिकाधिक मुश्किल होता जायेगा कि वह किसी देश की जन पक्षधर सरकार को अपनी धौंसपट्टी से झुका ले। इसलिए भविष्य में जनता की ताकत के मजबूत होने के पूरे संकेत हैं।

जब साम्राज्यवादी एक-दूसरे से लड़कर कमजोर पड़ जायेंगे तो इससे जनान्दोलन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। यह दुनिया की जनता के ऊपर है कि वह इन दोनों युद्धोन्मादी साम्राज्यवादियों को युद्ध करने से कब तक रोके रखती है, लेकिन इतना तय है कि भविष्य उथल-पुथल से भरा होगा जो नयी सम्भावनाओं के द्वार भी खोलेगा और साथ में नयी मुसीबतें भी ले आयेगा। इन सबके बीच इतिहास आगे की ओर बढ़ता रहेगा और साम्राज्यवाद अपने अन्त की ओर। ○

बम का व्यास

तीस सेंटीमीटर था बम का व्यास
और इसका प्रभाव पडता था सात मीटर तक
चार लोग मारे गये ग्यारह घायल हुए
इनके चारों तरफ एक और बड़ा घेरा है--
दर्द और समय का
दो हस्पताल और एक कब्रिस्तान तबाह हुए
लेकिन वह जवान औरत जो दफनाई गयी शहर में
वह रहने वाली थी सौ किलोमीटर दूर आगे कहीं की
वह बना देती है घेरे को और बड़ा
और वह अकेला शख्स
जो समुन्दर पार किसी देश के सुदूर किनारों पर
उसकी मृत्यु का शोक कर रह था--
समूचे संसार को ले लेता है इस घेरे में
और मैं अनाथ बच्चों के उस रूदन का
ज़िक्र तक नहीं करूंगा
जो पहुँचता है ऊपर ईश्वर के सिंहासन तक
और उससे भी आगे
और जो एक घेरा बनाता है बिना अन्त
और बिना ईश्वर का।

--येहूदा अमिखाई

विशेष लेख

पश्चिमी साम्राज्यवादियों ने यूक्रेन युद्ध को अपरिहार्य बना दिया

-- प्रवीण कुमार

सोवियत संघ के विघटन और आर्थिक संकट से घिरे रूस के पुनः उभार से पूरी दुनिया में और खासतौर पर पूर्वी यूरोप में एक नये शक्ति सन्तुलन के निर्माण की शुरुआत हो गयी जो अभी जारी है। मौजूदा रूस-यूक्रेन युद्ध इसी का हिस्सा है। यह युद्ध संकटग्रस्त पश्चिमी साम्राज्यवादियों (अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, इटली, कनाडा, जापान) द्वारा रूस पर नकेल कसे रखने की कोशिशों का परिणाम है। यूक्रेनी रणक्षेत्र में नाटो और रूस एक बार फिर टकराव की स्थिति में हैं। रूस के दो लाख से ज्यादा सैनिक यूक्रेन में घुसे हुए हैं और उन्होंने यूक्रेन के शहरों को घेर लिया है। यूक्रेन के शासकों की नव-नाजी सोच और खुद को नाटो का खिलौना बना लेने के चलते यूक्रेन इन दैत्याकार महाशक्तियों के टकराव का अखाड़ा बन गया है।

नाटो द्वारा रूस की घेराबन्दी

रूस का सबसे विकसित, विशाल पश्चिमी हिस्सा भौगोलिक रूप से खुला हुआ है। इतिहास में रूस पर दो भयावह हमले पश्चिम की ओर से ही हुए हैं-- नेपोलियन और हिटलर के हमले। नाजी जर्मनी को बुरी तरह हराकर दूसरे विश्वयुद्ध को निर्णायक मोड़ तक पहुँचाने वाले जोसेफ स्तालिन ने तत्कालीन सोवियत संघ प्रभाव क्षेत्र का विस्तार पश्चिमी यूरोप की दहलीज तक किया था। सामरिक नजर से यह पश्चिम से रूस की मुख्य भूमि की सुरक्षा गारंटी है। 1989 में सोवियत संघ बिखर गया और इससे पैदा हुए खालीपन को भरने के लिए रूस की पश्चिमी परिधि के क्षेत्रों, यानी पूर्वी यूरोप के देशों में अमरीका के नेतृत्व में नाटो ने अपना विस्तार अभियान छेड़ दिया। हालाँकि सोवियत संघ के विघटन के समय और जर्मनी के एकीकरण के समय भी नाटो ने वादा किया था कि वह जर्मनी से आगे और वारसा पैक्ट के देशों में अपना एक इंच भी विस्तार नहीं करेगा, जबकि आज वह सेंट पीट्सबर्ग और मास्को की दहलीज तक पहुँच चुका है। अमरीका का मानना है कि वह यूक्रेन को नाटो में शामिल करके रूस की गर्दन पर छुरी रख देगा। रूस को भी यही डर है और इसीलिए वह रक्षात्मक आक्रामकता की नीति अपनाकर नाटो को न केवल यूक्रेन से बल्कि पूरे पूर्वी यूरोप से पीछे धकेलना चाहता है।

शीत युद्ध के खात्मे के बाद नाटो के सदस्य देशों की संख्या 12 से बढ़कर 30 हो चुकी है। चेक गणराज्य, हंगरी और पोलैण्ड तीनों वारसा पैक्ट के सदस्य थे लेकिन 1999 में इन्हें नाटो का सदस्य बना लिया गया। रूस के साथ सीमा साझा करने वाले तीन बाल्टिक देश एस्तोनिया, लातविया, लिथुआनिया समेत 7 अन्य देश भी 2004 में नाटो के सदस्य बनाये गये। अब रूस की पश्चिमी सीमा की घेराबन्दी पूर्ण करने के लिए केवल यूक्रेन को नाटो में शामिल करना बाकी रह गया था।

तुर्की, बुल्गारिया और रोमानिया काला सागर बेसिन के देश हैं और नाटो के सदस्य हैं। काला सागर रूस की भूमध्य सागर में पहुँच का दरवाजा है। इन तीनों देशों के नाटो सदस्य होने के चलते रूस पहले ही काला सागर में घिरा हुआ था। 2008 में बुखारेस्त सम्मेलन में अमरीका ने जार्जिया और यूक्रेन को नाटो की सदस्यता देने का वादा किया था। इससे रूस की मुख्यभूमि की समुद्री घेराबन्दी पूर्ण हो जाती और भविष्य में काला सागर के रास्ते भूमध्य सागर में रूस की पहुँच को नाटो कभी भी बाधित कर सकता था।

यूक्रेन की सीमा से मास्को की दूरी 500 किलोमीटर से भी कम है। रूस का दूसरा सबसे महत्त्वपूर्ण शहर और पुरानी राजधानी पीट्सवर्ग एस्तोनिया की सीमा से 160 किलोमीटर से भी कम दूरी पर है, जो पहले ही नाटो में शामिल है। क्या अमरीका कभी यह स्वीकार कर सकता है कि कोई वाशिगंटन और न्यूयार्क की दहलीज पर मिसाइलें कायम कर दे। कुल मिलाकर, नाटो ने यूक्रेन को शामिल करने की दावत देकर रूस की मुख्य भूमि के लिए गम्भीर खतरा पैदा कर दिया था। खुली जवाबी के अलावा अब रूस के पास कोई ओर रास्ता नहीं था और वह इसी रास्ते पर आगे बढ़ा।

रूस का फिर से उभार और प्रतिरोध

2000 में जब पुतिन ने रूस की बागडोर सम्हाली तो यह सोवियत संघ के बिखराव की त्रासदी से अभी उबरा नहीं था। अभी भी अर्थव्यवस्था डाँवाडोल थी और विदेश नीति दिशाहीन। सोवियत संघ के विघटन को पुतिन ने "शताब्दी की सबसे बड़ी भू-राजनीतिक विभीषिका" कहा था। नाटो का अन्तहीन विस्तार पूर्वी यूरोप में

रूसी प्रभाव क्षेत्र के 30 लाख वर्ग किलोमीटर पर प्रभाव कायम कर चुका था और मुख्य भूमि पर खतरा असन्न था।

2008 में यूक्रेन की नाटो सदस्यता का पुरजोर विरोध रूस के बढ़ते आत्मविश्वास का संकेत था। इसी साल रूस ने जार्जिया के ओसेतिया और अब्खाजिया में चल रहे अलगाववादी संघर्ष में अपने सैनिक भेजे और इन दोनों क्षेत्रों को स्वायत्त घोषित कर दिया। यह दोनों क्षेत्र काला सागर के तटवर्ती हैं और अब रूस समर्थक ताकतों द्वारा शासित हैं।

2014 में यूक्रेन की सत्ता पश्चिम समर्थक ताकतों के हाथों में आ गयी तो रूस ने क्रीमिया प्रायदीप पर कब्जा कर लिया और काला सागर में अपनी स्थिति और मजबूत की। इसके अलावा यूक्रेन के दक्षिण पूर्वी क्षेत्र दोनबास में अलगाववादी ताकतों की मदद की और यूक्रेन के सैन्यबल इस पर नियंत्रण नहीं कर सके हैं। इन दोनों मामलों में पश्चिमी साम्राज्यवादी देश रूस को कोई खास नुकसान नहीं पहुँचा पाये।

2020 में बेलारूस में रूस समर्थक राष्ट्रपति के खिलाफ अमरीका के समर्थन से उभर रहे विद्रोह को कुचलने के लिए पुतिन ने सैन्य सहायता भेजी। इस अभियान में भी वह सफल रहे। बदले में बेलारूस के राष्ट्रपति अलेक्सान्द्र लुकासेन्को ने पिछले साल पुतिन की सहायता से पोलैण्ड की सीमा पर एक अजीबोगरीब शरणार्थी संकट खड़ा कर दिया। बेलारूस ने पश्चिमी एशिया और अफ्रीका से आये 31,000 से ज्यादा शरणार्थियों को यूरोपीय संघ की सीमाओं में घुसाया जो अब कई यूरोपीय देशों के लिए सरदर्द बने हुए हैं।

अर्मेनिया और अजरबैजान के बीच चले युद्ध को खत्म करवाने के लिए रूस ने हजारों शान्ति सैनिक भेजे और काकेशस में अपना रणनीतिक प्रभुत्व स्थापित किया।

मध्य एशिया के सबसे बड़े और सबसे धनी देश कजाकिस्तान में हुए सत्ता विरोधी उग्र प्रदर्शनों को दबाने के लिए भी रूस ने तुरन्त सैनिक भेजे। पुतिन यहाँ भी सफल रहे।

अफगानिस्तान में अमरीका की लज्जाजनक हार के बाद मध्य एशिया में रूस निर्णायक स्थिति में है। अब पुतिन की कोशिशें यूरोपीय सीमाओं पर अपना खोया प्रभाव पाने पर केन्द्रित हैं। सामरिक नीतियाँ अर्थनीति की सेवक होती हैं और उसके पीछे-पीछे चलती हैं। अर्थनीति का ही दिवाला पिट जाये तो केवल सामरिक ताकत के दम पर कोई भी सत्ता ज्यादा दिन कायम नहीं रह सकती। अमरीकी चौधराहट में लागू हुए वैश्वीकरण और नव उदारवाद का दिवाला पिट चुका है। 2008 के आर्थिक संकट से पश्चिमी जगत कभी उभर नहीं पाया। पहले लातिन अमरीका और बाद में पश्चिमी एशिया और मध्य एशिया में अमरीकी चौधराहट को जबरदस्त नुकसान पहुँचा है। इन बदली हुई वैश्विक परिस्थितियों को पुतिन बखूबी समझते हैं और इससे ही आगे कदम बढ़ाने का हौसला पाते हैं।

यूक्रेन की सत्ता पर नव-नाजियों का कब्जा

साम्राज्यवाद लोकतंत्र को सहन नहीं कर सकता। वह समाज की सबसे पिछड़ी विचारधाराओं के सहारे ही आगे बढ़ सकता है। पहले मध्य और पश्चिमी एशिया पर प्रभुत्व के लिए अमरीका ने इस्लामिक चरमपंथ को खड़ा किया था। पूर्वी यूरोप पर प्रभुत्व के लिए उसने नाजियों की नयी नस्लों को खड़ा किया है। 2004 में पश्चिमी साम्राज्यवादियों ने यूक्रेन में रूस समर्थक सरकार का तख्तापलट करके इसे नारंगी क्रान्ति का नाम दिया था। नव-नाजीवाद के अंकुर इसी में दिखने लगे थे। अमरीका और यूरोपीय संघ ने इनकी परवरिश करके उन्हें जहरीले दरख्तों में तब्दील किया, इसका पूरा इतिहास मौजूद है। ऐसा उन्होंने केवल यूक्रेन में ही नहीं बल्कि पूर्वी यूरोप के सभी देशों में किया।

2014 में नव-नाजियों ने पश्चिमी साम्राज्यवादियों की मदद से यान्कोविच की सरकार का तख्ता पलट किया था। हालाँकि वह भी पश्चिम समर्थक थे, लेकिन 2012 में जब आईएमएफ और यूरोपीय संघ ने उन पर नव उदारवादी नीतियाँ लागू करने का जरूरत से ज्यादा दबाव बना दिया तो वह रूस की ओर झुक गये। इस समय तक यूक्रेनी राज्य शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन जैसी बुनियादी जन सेवाएँ जनता को बहुत सस्ते में उपलब्ध करवा रहा था। आज तक भी आलम यह है कि एमबीबीएस की पढ़ाई यूक्रेन में भारत से औसतन 6 गुना सस्ती है। इसके अलावा जनता को जरूरी ईंधन सामग्री खासतौर पर प्राकृतिक गैस पर भी सरकार बहुत ज्यादा सब्सिडी देती थी। यूरोप और आईएमएफ प्राकृतिक गैस समेत जनता को मिलने वाली इन सभी सुविधाओं का निजीकरण चहाते थे। यूरोपीय संघ की अर्थव्यवस्था आर्थिक संकट में फँसी थी, इसके अलावा तेल और प्राकृतिक गैस के मामले में रूस पर उनकी निर्भरता बहुत ज्यादा बढ़ गयी थी। यान्कोविच ने यूरोपीय संघ और आईएमएफ के दबाब के आगे झुकने से इनकार कर दिया और 2013 में रूस के साथ हाथ मिला लिया।

पश्चिमी मीडिया ने तुरन्त ही यान्कोविच की सरकार और रूस के खिलाफ यूक्रेन में प्रचार युद्ध छेड़ दिया। वे रातोंरात भ्रष्टाचारी, तानाशाह और जाने क्या-क्या बना दिये गये। कमाल तो यह था कि यान्कोविच के खिलाफ भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन हाथ में नाजीवाद का झण्डा उठा कर किया गया। एक साल के अन्दर ही मामला भ्रष्टाचार से बढ़कर अल्पसंख्यक रूसी भाषी और अन्य धर्मावलम्बियों के खिलाफ नफरती अभियान तक पहुँच गया। अमरीका ने नव-नाजियों की उसी तरह मदद की जैसे अफगानिस्तान में धर्मान्ध मुजाहिद्दीनों की की थी। अन्धाधुन्ध प्रचार के जरिये पहले निकृष्ट समझे जाने वाले नव-नाजीवादी यूक्रेन के नायक और देशभक्त बना दिये गये। अमरीका ने उनके लिए हथियारों और डॉलरों की नदी बहा दी। रूसी भाषी और रूस

समर्थक लोगों की हत्याएँ आम बात हो गयीं। इनके उत्पात के खिलाफ जब यूक्रेनी जनता सड़कों पर उतरी तो नव-नाजी गिरोहों के साथ-साथ उसे यूक्रेन की सेना और पुलिस की गोलियों का भी सामना करना पड़ा। रूस समर्थकों का यूक्रेन की सत्ता से सफाया किया गया और नव-नाजियों को सत्तासीन किया गया। उनके हथियारबन्द गिरोहों को ज्यों का त्यों सैन्य बलों में शामिल किया गया। दोनबास क्षेत्र में रूसी भाषियों के कत्लेआम के लिए मशहूर अजोव बटालियन ऐसे ही गिरोहों को मिलाकर बनायी गयी है।

सत्ता सम्भालते ही नव-नाजियों ने एक तरफ नस्लवादी और फर्जी राष्ट्रवादी सोच को बढ़ावा दिया, दूसरी तरफ जनता को मिलने वाली सुविधाओं में तेजी से कटौती की। प्राकृतिक गैस पर मिलने वाली सब्सीडी घटाकर आधी कर दी गयी। यूरोपीय संघ की सिफारिश पर आईएमएफ ने यूक्रेन सरकार को 27 अरब डॉलर का कर्ज दिया। यह समान परिस्थितियों में आईएमएफ द्वारा दिये जाने वाले कर्ज से 6 गुना बड़ा था और यूक्रेन की हैसियत से कहीं ज्यादा। स्पष्ट था कि यूक्रेन इसे कभी नहीं चुका पायेगा और इसकी भरपायी अपने प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों के जरिये ही करेगा। यूक्रेन का वही हश्र होगा जो यूनान का हुआ था। अन्ततः यूक्रेन के विशाल ऊर्जा भण्डार पश्चिमी यूरोप के कब्जे में होंगे।

पश्चिमी साम्राज्यवादियों ने युद्ध को अपरिहार्य बना दिया

नव-नाजियों का घोषित उद्देश्य है एक नस्ल, एक भाषा, एक धर्म के लोगों का यूक्रेन। 2014 में यूक्रेन की सत्ता में स्थापित होने के बाद उन्हें जनता के जबरदस्त विरोध का सामना करना पड़ा था। साम्राज्यवाद के सेवक नव-नाजी गिरोहों और यूक्रेनी सुरक्षा बलों ने जन आन्दोलन का जितना बर्बर दमन किया उसकी समकालीन यूरोप में कोई मिसाल नहीं है। उन्होंने यूक्रेन की सड़कों को नाजीवाद विरोधी जनता की लाशों से पाट दिया था। रिपोर्टें बताती हैं कि वे अब तक अपने ही देश के 20 हजार से ज्यादा नागरिकों की हत्या कर चुके हैं। उनके हत्यारे अभियानों के चलते 35 लाख से ज्यादा यूक्रेनी देश छोड़ने को मजबूर हुए हैं। उनके सारे कुकर्म साम्राज्यवादी मीडिया उनके पक्ष में लगातार किये जाने वाले धुआँधार प्रचार से ढक देता है। बदले में नव-नाजी पश्चिमी साम्राज्यवादियों के हर आदेश को हिटलरी आदेश की तरह सर्वोपरि मानकर पूरा करते हैं।

नव-नाजियों का सबसे जबरदस्त विरोध दोनबास और क्रीमिया में हुआ था। निश्चय ही रूस यहाँ उनके विरोधियों की हर सम्भव मदद करता रहा है। क्रीमिया तो पहले ही रूस में शामिल होकर नव-नाजियों के कहर से बच गया लेकिन दोनबास में अभी तक उनका कहर जारी है। इस क्षेत्र में शान्ति बहाली के लिए फ्रांस, जर्मनी, रूस और यूक्रेन के बीच 2015 में मिंस्क समझौता हुआ था। जिसे बाद में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने भी मंजूरी दी थी। ऑगेनाइजेशन फॉर सिक्योरिटी (ओएसईसी) का गठन हुआ था। इसकी जिम्मेदारी समझौते के तहत हुए युद्ध विराम पर नजर रखने की थी। ओएसईसी का कहना है कि यूक्रेन ने दोनबास क्षेत्र में कभी भी युद्ध विराम का पालन नहीं किया।

तुरन्त युद्ध विराम के अलावा समझौते में तय हुआ था कि यूक्रेन अपने संविधान में संशोधन करके दोनेश्क और लुहान्स्क को स्वायत्त क्षेत्र घोषित करेगा और वहाँ स्थानीय सरकारें कायम करवायेगा। यूक्रेन ने आज तक इस शर्त को पूरा नहीं किया। 2019 में मौजूदा राष्ट्रपति जेलेन्सकी ने इसके लिए संसद में प्रस्ताव लाने की कोशिश की तो अमरीकी आदेश पर नव-नाजी तुरन्त सड़कों पर उतर आये और जेलेन्सकी पर रूस समर्थक होने का आरोप लगाया। उन्होंने खुलेआम धमकी दी कि उसका भी वही हश्र होगा जो यान्कोविच का हुआ था। समझौते में शामिल फ्रांस और जर्मनी ने कभी भी यूक्रेन पर समझौता लागू करने का दबाब नहीं बनाया और लगातार नव-नाजियों की मदद करते रहे।

यूक्रेन की सत्ता पर नव-नाजियों को काबिज करवाकर साम्राज्यवादियों ने युद्ध को अनिवार्य बनाया है। वे मास्को की दहलीज पर नाभिकीय हथियारों से लैस और जबरदस्त युद्धक क्षमता वाले नव-नाजीवादी यूक्रेन को बैठाना चाहते हैं। इससे उन्हें दुहरा लाभ है-- वे रूस को लम्बे समय तक उलझाकर रख सकते हैं; दूसरे, वे यूक्रेन का इस्तेमाल पश्चिमी यूरोप की सुरक्षा दीवार के रूप में कर सकते हैं। इसके चलते यूक्रेन तबाह हो जाये इसकी उन्हें कोई परवाह नहीं।

पश्चिमी साम्राज्यवादी युद्ध को लम्बा खींचना चाहते हैं

युद्ध के बिना साम्राज्यवाद की कल्पना करना मुश्किल है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद कोई ऐसा दिन नहीं गया जब साम्राज्यवादी कहीं युद्ध में लिप्त न रहे हों। अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और जापान, तमाम पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों की अर्थव्यवस्थाएँ गम्भीर संकट की गिरफ्त में हैं। वे जानते हैं कि यूक्रेन इस युद्ध को नहीं जीत सकता, लेकिन उसे हथियार और आर्थिक मदद देकर और दूसरी तरफ रूस पर प्रतिबन्ध लगाकर युद्ध को लम्बा खिंचवाया जा सकता है। हिलेरी क्लिंटन ने सार्वजनिक रूप से कहा है कि अमरीका यूक्रेन को रूस का अफगानिस्तान बनाना चाहता है।

इस युद्ध में पश्चिम साम्राज्यवादी कई तरह के युद्धेतर फायदे भी देख रहे हैं। युद्ध से उनके हथियार उद्योग और मीडिया उद्योग में जबरदस्त तेजी आयेगी, जो अर्थव्यवस्था के दूसरे क्षेत्रों में भी कुछ प्राण फूँकेगी। कोरोना के बाद और भी गहरे संकट में फँस चुकी उनकी अर्थव्यवस्था को कुछ राहत मिलेगी।

कोरोना के बाद अमरीका और यूरोप में सार्वजनिक स्वास्थ्य

प्रणाली और शिक्षा प्रणाली में सरकारी निवेश की माँग बढ़ी है। जनता को मिलने वाली सहूलियतों पर खर्च बढ़ाने के लिए लगभग हर साम्राज्यवादी देश में जन प्रर्दशन हो चुके हैं। फ्रांस और जर्मनी में जबरदस्त किसान आन्दोलन हुए हैं। कोरोना के नाम पर जनता के उत्पीड़न के खिलाफ कनाडा के ट्रक डाइवरों के आन्दोलन के चलते राष्ट्रपति को अपना महल छोड़कर भागना पड़ा। यह आन्दोलन यूरोप में भी फैलना शुरू हो गया था। यूक्रेन युद्ध और इसके धुआँधार वैश्विक प्रचार ने जनता का ध्यान भटकाने में मदद की और साम्राज्यवादी शासकों को इन संकटों से कुछ समय के लिए बचा लिया है, युद्ध जितना लम्बा खिंचे, साम्राज्यवादियों के लिए उतना ही बेहतर है।

रूस-यूक्रेन युद्ध परोक्ष रूप में नाटो और रूस-चीन के नेतृत्व में तैयार हो रहे नाटो विरोधी खेमे के बीच का युद्ध है। यह दुनिया में पिछले सालों में हुए बड़े आर्थिक संकटों, कूटनीतिक प्रयासों और भू-राजनीतिक बदलावों का परिणाम है और निश्चय ही बड़े बदलावों का जन्मदाता भी बनेगा। 1990 के दशक में ''अमरीकी शताब्दी'' का जो ढोल पीटा गया था, वह फट चुका है। इतिहास के अन्त की घोषणाएँ बकवास साबित हुई हैं। सैमुएल पी. हटिंगटन की किताब 'क्लैश ऑफ सिविलाइजेशन' का यह सिद्धान्त-- 'सांस्कृतिक और धार्मिक पहचान ही युद्धों का कारण है', दो कौड़ी का भी नहीं रहा। इतिहास ने फिर इस बात को सतह पर ला दिया कि युद्ध के पीछे आर्थिक-राजनीतिक कारकों की प्रमुख भूमिका होती है। पश्चिमी साम्राज्यवादी देश अपनी लूट और एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था को बदस्तूर जारी रखना चाहते हैं। रूस और चीन का गँठजोड़ दुनिया की लूट में पहले से ज्यादा बड़ा हिस्सा चाहता है और अपने लिए एक अलग ध्रुव का निर्माण कर रहा है।

पश्चिमी साम्राज्यवादियों का जोर कभी दक्षिणी चीन सागर में चीन को घेरने पर होता है तो कभी काला सागर और पूर्वी यूरोप में रूस को घेरने पर।

आज अमरीका और यूरोपीय देशों का मीडिया एशियाई और अफ्रीकी नस्लों के प्रति नफरत और यूक्रेनी नव-नाजियों की प्रशंसा से भरा पड़ा है। वे यूक्रेनियों के जीवन की कीमत पर रूस की अर्थव्यवस्था को डुबाना चाहते हैं। रूस पर हर तरह के प्रतिबन्ध लगाकर और यूक्रेनी नव-नाजियों को ज्यादा से ज्यादा हथियार और डॉलर देकर वे यूक्रेनियों के लहू से रूस के लिए एक ऐसी दलदल तैयार करना चाहते हैं जिससे रूस कभी निकल न सके। यह अमरीका की जानी-पहचानी नीति है। वह बहुत से देशों को इसका शिकार बना चुका है। अफगानिस्तान में रूस के खिलाफ मुजाहिद्दीनों को तैयार करते हुए भी उसने यही चाल चली थी, जब तत्कालीन अमरीकी विदेश मंत्री ब्रिजेन्सकी ने खैबर पख्तूनवा में एक हाथ में कुरान और दूसरे में एके-47 लेकर कहा था कि अफगानिस्तान को काफिरों से मुक्त कर दो। आज वे यूक्रेन में यही बात नव-नाजियों से कह रहे हैं।

अपनी वैश्विक लूट को जारी रखने के लिए पश्चिमी साम्राज्यवादियों ने दुनिया के कई हिस्सों में युद्ध का जो दलदल तैयार कर रखा है, वह पूरी दुनिया की मेहनतकश जनता की गाढ़ी कमाई, उसके अधिकार और जीवन को खाये जा रही है। युद्ध मानवता के खिलाफ अपराध है। जब तक दुनिया में साम्राज्यवादी रहेंगे वे चाहे अमरीकी हो या रूसी, तब तक युद्ध जारी रहेगा। साम्राज्यवाद से मुक्त दुनिया ही युद्ध से मुक्त दुनिया हो सकती है।

दुनिया के दस सबसे शक्तिशाली देश

दुनिया के सबसे शक्तिशाली देशों को चिन्हित करने में मनोगत होने की पूरी सम्भावना होती है। फिर भी आज के सन्दर्भों में सबसे शक्तिशाली राष्ट्र वे हैं जिनके पास भरपूर पूँजी और उन्नत तकनोलोजी है, जो कई देशों पर अपना आर्थिक दबदबा कायम रखते हैं, नीति निर्माण में पहलकदमी रखते हैं, और जिनके पास विश्वस्तरीय रक्षा और सैन्य ताकत भी होती हैं। यूएस न्यूज एंड वर्ल्ड रिपोर्ट, बीएवी ग्रुप और पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय ने मिलकर दुनिया के सबसे शक्तिशाली देशों की एक सूची तैयार की है। इसमें सैन्य गठबन्धन, अन्तर्राष्ट्रीय गठबन्धन, राजनीतिक प्रभाव, आर्थिक प्रभाव और नेतृत्व आदि मानदण्डों के आधार पर देशों की रैंकिंग की गयी है। इस सूची के अनुसार 2021 के 10 सबसे शक्तिशाली राष्ट्र हैं-- संयुक्त राज्य अमरीका, चीन, रूस, जर्मनी, यूनाइटेड किंगडम, जापान, फ्रांस, दक्षिण कोरिया, सऊदी अरब और संयुक्त अरब अमीरात। भारत 13 वें स्थान पर है।

इस सूची के अनुसार अमरीका दुनिया का सबसे शक्तिशाली देश है। 2020 में 20.93 ट्रिलियन डॉलर की जीडीपी और 2020 में 778 बिलियन डॉलर के सबसे बड़े सैन्य बजट के साथ वह दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। अमरीकी रक्षा खर्च अगले दस सबसे बड़े रक्षा खर्च वाले देशों के सम्मिलित रक्षा खर्च से भी अधिक है। चीन और रूस दूसरे और तीसरे सबसे शक्तिशाली देश हैं, जो अपने सैन्य खर्च और विशाल भौतिक विस्तार के लिए जाने जाते हैं। 14.3 ट्रिलियन डॉलर की जीडीपी के साथ चीन की एक बड़ी अर्थव्यवस्था भी है। सूची में अगला जर्मनी, यूनाइटेड किंगडम, जापान और फ्रांस हैं, जिनमें से सभी बड़ी अर्थव्यवस्थाएँ हैं और उच्च मात्रा में अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पूँजी का निर्यात करके मुनाफा अर्जित करती हैं।

विशेष लेख

यूक्रेन संकट : अमरीकी चौधराहट वाली विश्व व्यवस्था में चौड़ी होती दरार

-- विक्रम प्रताप

रूस का यूक्रेन पर हमला वैश्विक महत्त्व की घटना है और 21वीं सदी के इतिहास का एक निर्णायक मोड़ है। यह विश्व समीकरण में बदलाव की शुरुआत का संकेत है। इसके साथ ही यह हमला यूक्रेनी जनता पर कहर बरपा रहा है और 21वीं सदी के सबसे बड़े शरणार्थी संकट को जन्म दे रहा है।

यूक्रेन संकट ने साफ कर दिया है कि अब दुनिया दो शक्तिशाली खेमों में बँटती जा रही है। अमरीकी चौधराहट वाली एकध्रुवीय व्यवस्था इतिहास की चीज बनती जा रही है। एक ओर अमरीकी गिद्ध के साथ यूरोपीय भेड़िये, जापानी लकड़बग्घा और ऑस्ट्रेलियाई कंगारू है तो दूसरी ओर रूसी भालू के साथ चीनी ड्रैगन है। यूक्रेन पर हमले के बाद बाइडेन के सम्बोधन में आत्मविश्वास की कमी और घबराहट देखी गयी, जो यूक्रेन मामले में अमरीकी खेमे की कमजोरी का स्पष्ट संकेत थी।

शुरू में नाटो और अमरीका की चुप्पी को समझा जा सकता है। नाटो का कोई देश अगर यूक्रेन की ओर से लड़ता है तो यह माना जाएगा कि अमरीका सीधे रूस के खिलाफ यूक्रेन के मोर्चे पर लड़ रहा है और यह कदम अमरीका-रूस के बीच सीधे टकराव और तीसरे विश्व युद्ध की ओर ले जा सकता है। अमरीका यह नहीं चाहता। इसलिए नाटो के हाथ बँधे हुए हैं।

नाटो से अलग देशों के पसीने छूट रहे हैं कि बिल्ली के गले में कौन घण्टी बाँधे। शुरू में यूक्रेन की मदद करके कोई भी सीधे रूस-चीन से दुश्मनी मोल लेना नहीं चाहता था, लेकिन जब रूसी हमला घातक हो चला, यूक्रेन का प्रतिरोध बढ़ता गया और दुनिया भर में रूस के खिलाफ पश्चिमी देशों के धुआँधार प्रचार अभियान से उसका चौतरफा विरोध शुरू हुआ तो इससे उत्साहित होकर नाटो देश यूक्रेन को हथियारों और वित्तीय संसाधनों से मदद को तैयार हो गये। इस तरह रूस को रोकने की कोशिश शुरू हो गयी।

एकध्रुवीय व्यवस्था के निर्माण में नाटो की आपराधिक भूमिका

1989 में, जब सोवियत संघ का विघटन नहीं हुआ था और सोवियत संघ के प्रभाव वाला पूर्वी जर्मनी और अमरीका के प्रभाव वाला पश्चिम जर्मनी दो अलग देश थे, उस समय अमरीका के विदेश मंत्री जेम्स बेकर ने पूर्वी जर्मनी और पश्चिम जर्मनी के एकीकरण के बारे में सोवियत महा सचिव मिखाइल गोर्वाचोव को भरोसा दिलाया था कि इस एकीकरण से नाटो का विस्तार सोवियत रूस तथा पूर्वी यूरोप की ओर एक इंच भी नहीं होगा।

जेम्स बेकर की वेबसाइट पर स्वीकार किया गया है कि जर्मनी के एकीकरण के समय "... जर्मनी में नाटकीय परिवर्तनों के चलते अमरीकी राष्ट्रपति बुश और विदेश मंत्री बेकर को एक अप्रत्याशित मौका मिला। 40 वर्षों तक, विभाजित जर्मनी शीत युद्ध के तनावों का केन्द्र बिन्दु था। अब, बर्लिन की दीवार गिरने के साथ, बेकर और बुश ने जर्मनी के फिर से एकीकरण और नये एकीकृत जर्मनी को पश्चिमी देशों के सैन्य गठबन्धन नाटो में लाने का सुनहरा मौका परख लिया।" यह है साम्राज्यवादी अमरीका का बिखरते सोवियत संघ को दिलाये गये भरोसे की अन्तिम परिणति। धोखा, छलावा और वादा-खिलाफी अमरीकी रणनीति के महत्त्वपूर्ण अंग रहे हैं। इसलिए रूस शायद ही आज अमरीका की किसी बात का विश्वास करे।

1949 में सोवियत खेमे की घेरेबन्दी के लिए अमरीकी खेमे ने नाटो का गठन किया था, उस समय उसके 12 सदस्य देश थे। इसके जवाब में सोवियत संघ ने वारसा पैक्ट के जरिये (वारसा ट्रीटी ऑर्गनाजेशन) अल्बानिया, बुल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया, पूर्वी जर्मनी, हंगरी, पोलैण्ड और रोमानिया को नाटो के मुकाबले में खड़ा किया था। अमरीका ने 1991 में न केवल सोवियत संघ के विघटन के बाद अलग हुए देशों को, बल्कि वारसा पैक्ट के देशों को भी एक-एक कर नाटो में शामिल करना शुरू किया। जब एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था बन गयी और अमरीका उसका सिरमौर था, सोवियत संघ के विघटन के बावजूद उसने पूर्वी यूरोप में नाटो का विस्तार जारी रखा। इस तरह रूस की घेरेबन्दी की जाती रही और धीरे-धीरे यह शिकंजा कसा जाता रहा। आज नाटो में कुल 30 देशों को शामिल किया जा चुका है। यही रूस के लिए सबसे चिन्ता की बात है और यूक्रेन द्वारा नाटो की सदस्यता के लिए किये जानेवाले प्रयास से रूस खासा नाराज था क्योंकि यूक्रेन के सदस्य बनते ही नाटो और अमरीकी सेना का विस्तार मास्को के दरवाजे तक पहुँच जाता जो न तो रूस को मंजूर था और न ही चीन को।

12 मार्च 1947 से 3 दिसम्बर 1989 तक सोवियत संघ और अमरीका के बीच शीत युद्ध चलता रहा। इस दौरान नाटो ने कोई सैन्य अभियान नहीं चलाया क्योंकि उसके सामने सोवियत संघ के रूप में एक मजबूत प्रतिद्वन्द्वी खड़ा था जो उसका मुँहतोड़ जवाब देने की क्षमता रखता था। यही वह दौर था जब अमरीका को वियतनाम और कोरिया युद्ध में मुँह की खानी पड़ी, क्यूबा को मिसाइल संकट झेलना पड़ा और धौसपट्टी की रणनीति पर लगाम लगानी पड़ी। 1989 में बर्लिन की दीवार गिरने से यूरोप में नाटो की भूमिका में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ आया। शीत युद्ध के खात्मे और सोवियत विघटन के बाद, बेखौफ नाटो ने अपना पहला हमला इराक पर किया।

1990 के दशक में, नाटो ने अपनी गतिविधियों का विस्तार सैन्य कार्रवाइयों से इतर राजनीतिक और मानवीय गतिविधियों तक किया जिसके बारे में पहले नाटो रुचि नहीं लेता था। यूगोस्लाविया के विभाजन के दौरान, इसने 1992 से 1995 तक बोस्निया में और बाद में 1999 में यूगोस्लाविया में सैनिक हमला करके जमकर तबाही मचायी। 28 फरवरी 1994 को, नाटो ने संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा घोषित नो-फ्लाई जोन का उल्लंघन करते हुए चार बोस्नियाई सर्ब विमानों को मार गिराया। नाटो के हवाई हमले में तबाह यूगोस्लाविया नवम्बर 1995 में डेटन समझौते के लिए बाध्य कर दिया गया। इस समझौते के तहत नाटो ने एक संयुक्त राष्ट्र-अनिवार्य शान्ति सेना को तैनात करके इस पूरे इलाके को सैनिक छावनी में बदल दिया।

1999 में जिस समय नाटो युगोस्लाविया के ऊपर बमबारी करके निर्दोष जनता का नरसंहार कर रहा था, उसी समय नाटो के विरोध में खड़े सर्बिया की समाजवादी पार्टी के नेता और 90 के दशक के दौरान युगोस्लाविया की सरकार के प्रमुख रहे स्लोबोडन मिलोसेविक के ऊपर युद्ध अपराध के आरोप लगाये गये। बोस्नियाई युद्ध, क्रोएशियाई स्वतंत्रता युद्ध और कोसोवो युद्ध के सम्बन्ध में यह आरोप अन्तर्राष्ट्रीय आपराधिक न्यायाधिकरण (अमरीकी दादागिरी के तहत संयुक्त राष्ट्र द्वारा गठित संस्था) द्वारा लगाया गया था। स्पष्ट था कि युद्ध अपराधी अमरीका और नाटो संयुक्त राष्ट्र पर अपना प्रभाव जमाकर उलटे अपने देश की रक्षा करनेवाले स्लोबोडन मिलोसेविक को ही युद्ध अपराधी ठहराने का प्रपंच रच रहे थे क्योंकि विश्व स्तर पर उनका जवाब देनेवाल रूस कमजोर पड़ गया था। 11 जून 1999 को मजबूरी में मिलोसेविक ने संयुक्त राष्ट्र के उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, जिसके तहत नाटो की तथाकथित शान्ति सेना इलाके में गस्त करनेवाली थी।

अमरीका द्वारा अफगानिस्तान पर हमले के लिए भी एक बड़ा प्रपंच रचा गया। 11 सितम्बर को वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर पर हुए हमले का बहाना बनाकर अमरीकी नेतृत्व में नाटो ने अफगानिस्तान के ऊपर हमला कर दिया। नाटो ने अपने संगठन के इतिहास में पहली बार नाटो चार्टर के अनुच्छेद 5 को लागू किया था। इस अनुच्छेद में कहा गया है कि किसी भी सदस्य पर हमला सभी पर हमला माना जाएगा। जबकि यह रहस्य अब खुल चुका है कि अमरीका ने झूठ बोला था कि वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर पर हमले का मास्टर माइण्ड अल-कायदा प्रमुख ओसामा बिन लादेन अफगानिस्तान में छिपा हुआ है और अफगान सरकार उसकी मदद कर रही थी। अफगानिस्तान युद्ध में लाखों निर्दोष नागरिक मारे गये, लेकिन इसके लिए पूरी तरह जिम्मेदार अमरीका को संयुक्त राष्ट्र संघ में युद्ध अपराधी ठहराने का प्रस्ताव नहीं लाया जा सका। ऐसी हिम्मत किसी भी देश में न थी जो यह प्रस्ताव ला सके।

यही स्थिति इराक और लीबिया हमले में भी थी, जहाँ जनता को कीड़े-मकोड़ों की तरह बमवर्षक विमानों का निशाना बनाया गया। उस समय भी संयुक्त राष्ट्र मौन रहा। इराक युद्ध के दौरान, नाटो ने अमरीकी हमले का समर्थन किया, जबकि यह युद्ध किसी नाटो देश की सुरक्षा के लिए नहीं लड़ा जा रहा था। अगस्त 2004 में, नाटो प्रशिक्षण मिशन का गठन इराक में किया गया जिसका उद्देश्य इराक में अमरीकी नरसंहार के लिए सेना को प्रशिक्षित करना था। अमरीका ने कर्नल गद्दाफी की सरकार के खिलाफ विद्रोहियों की मदद करके लीबिया में गृहयुद्ध भड़काने का काम किया। इसमें भी नाटो की प्रमुख भूमिका थी। इस गृहयुद्ध में कर्नल गददाफी को अपनी सत्ता और जान से हाथ धोना पड़ा।

आइये, अब अमरीकी चौधराहट वाली विश्व व्यवस्था की आर्थिक-राजनीतिक तस्वीर पर एक नजर डाली जाये ताकि यह देखा जा सके कि वह किस तरह दुनिया की जनता के सीने पर सवार होकर शासन करता रहा।

अमरीकी चौधराहट वाली एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था

अब तक पूरी दुनिया पर अमरीकी चौधराहट वाले साम्राज्यवाद का वर्चस्व कायम रहा है और दुनिया के अधिकांश देशों की राजसत्ताएँ खुलेआम विश्व पूँजीवाद की लूट-खसोट को आसान बनाती रही हैं। साम्राज्यवादी पूँजी लोकतंत्र नहीं, वर्चस्व चाहती है। 1990 के बाद, जब अमरीकी साम्राज्यवाद ने पूरी दुनिया पर अपना वर्चस्व कायम कर लिया, तो उसके हित में काम करनेवाली राजसत्ताएँ भी लगातार अपने आप को अधिनायकवादी रंग में रंगती गयीं। मजबूत नेतृत्व और जनविरोधी, अधिनायकवादी सत्ताधारी ही इस दौर में पूँजीवादी लूटतंत्र को निर्बाध रूप से जारी रख सकते थे। उन्होंने ऐसा ही किया और अब तक कर रहे हैं।

वैसे तो नव उदारवाद की परिघटना अमरीका और ब्रिटेन में अस्सी के दशक से ही रीगन और थ्रेचर की नीतियों के रूप में शुरू हो चुकी थी, जब सामाजिक कल्याण पर सरकारी खर्च में कटौती की गयी और उनको निजी मुनाफाखोरों के हवाले कर दिया गया, लेकिन 1990 के आसपास दुनियाभर में एकध्रुवीय विश्व पूँजीवादी व्यवस्था की स्थापना के बाद इसे दुनिया के तमाम देशों में तेजी से आगे बढ़ाया गया। विश्व बैंक, अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और

नव उदारवादी व्यवस्था

यह पुराने उदारवाद का पुनरुत्थान नहीं, बल्कि उसका सबसे बीभत्स और भयावह रूप है। उदारवाद पूँजीवादी क्रान्तियों और आधुनिकता की विचारधारा के रूप में स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के नारे के साथ प्रकट हुआ था। हालाँकि व्यवहार में यह नारा कहीं भी फलीभूत नहीं हुआ, लेकिन सिद्धान्त रूप में राजसत्ता इन मूल्यों से इनकार नहीं करती थी। नव उदारवादी दौर में स्वतन्त्रता सिर्फ पूँजी और बाजार की स्वतन्त्रता तक सीमित है। समानता की जगह विकराल असमानता ने ले ली, जिसका नतीजा है विभिन्न देशों के बीच और एक ही देश के भीतर विभिन्न वर्गों-तबकों की आय के बीच दिनोंदिन चौड़ी होती खाई। जहाँ तक भाईचारे का सवाल है, यह विभिन्न देशों के पूँजीपतियों और उनके पिछलग्गुओं के बीच सिमट कर रह गया है, जबकि मेहनतकश मजदूरों, किसानों शोषण और उनके साथ शासक वर्गों का शत्रुतापूर्ण सम्बन्ध अपने चरम पर है। तीसरी दुनिया के शासक साम्राज्यवादी पूँजी के लिए तोरण द्वार सजाते हैं, देशी-विदेशी पूँजीपतियों के गँठजोड़ के लिए उनके बेलगाम मुनाफे की गारन्टी करते हैं। नव उदारवादी राजसत्ता जनता से छीन कर पूँजीपतियों की तिजोरी भरती है।

आगे चलकर विश्व व्यापार संगठन जैसी साम्राज्यवादी संस्थाओं ने इस काम को योजनाबद्ध तरीके से सम्पन्न किया।

1990 के दशक में विश्व समीकरण में बदलाव के बाद, दूसरे विश्व युद्ध के बाद एक-एक कर नवस्वाधीन हुए देशों के शासकों ने आत्मनिर्भर विकास का रास्ता छोड़ दिया। साम्राज्यवादी पूँजी के साथ नत्थी होने में ही उनको अपना लाभ दिखायी दिया। उन्होंने 'वाशिंगटन आम सहमति' के तहत नव उदारवादी नीतियों को स्वीकार कर लिया। जिन देशों के शासकों ने इन नीतियों को अपनाने में आनाकानी की, उन्हें अमरीकी चौधराहट में साम्राज्यवादी शक्तियों ने धौंस-पट्टी, प्रतिबन्ध और सामरिक हमले का निशाना बनाया। कल्याणकारी योजनाओं से हाथ पीछे खींचना, विदेशी पूँजी पर लगाये गये प्रतिबन्धों को हटाना और सार्वजानिक क्षेत्र के उद्यमों को एक-एक कर निजी हाथों में देने का काम शुरू हुआ। इस प्रक्रिया को एक सुन्दर-सलोना नाम दिया गया-- ढाँचागत समायोजन। राजसत्ता की भूमिका पहले पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली की हिफाजत के साथ-साथ सामाजिक संरचना की हिफाजत और उसका संचालन करने में भी थी। लेकिन नव उदारवादी दौर में यह पूरी तरह पूँजी और मुनाफे की हिफाजत में लग गयी। अकसर इससे यह भ्रम होने की गुंजाइश बनी रहती है कि नव उदारवाद पूँजीवादी व्यवस्था की ताकत को दर्शाता है, जबकि सच्चाई इसके उलट है। यह उसकी कमजोरी का प्रतीक है। नव उदारवाद असाध्य और चिरन्तन संकट से ग्रस्त विश्व पूँजीवादी व्यवस्था के मौजूदा दौर की विश्वव्यापी रणनीति है।

एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था में दरार और दूसरे खेमे का उभार

नव उदारवादी विश्व व्यवस्था की एक बुनियादी समस्या यह है कि तमाम साम्राज्यवादियों के बीच लूट का बँटवारा किस तरह से किया जाये, जिससे उनके बीच के अन्तरविरोध शान्तिपूर्ण बने रहे और बेलगाम होकर शत्रुतापूर्ण न बन जायें तथा एकध्रुवीय व्यवस्था का अन्त न कर दे। हालाँकि दो ध्रुवीय या बहु ध्रुवीय दुनिया की कोशिश कई साम्राज्यवादी देशों द्वारा की जाती रही, लेकिन अमरीकी चौधराहट को चुनौती देने का साहस कोई न कर सका। इसके अलावा अमरीका लगातार कोशिश करता रहा कि लूट में हिस्सा देकर सभी साम्राज्यवादियों को शान्त रखा जाये। 6 पुराने साम्राज्यवादी देश कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान और यूनाइटेड किंगडम आगे चलकर उसके लिए खतरा न बने, इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए अमरीका के नेतृत्त्व में एक अन्तरराष्ट्रीय अन्तर सरकारी आर्थिक संगठन जी-7 का गठन किया गया। लेकिन रूस को एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था में समाहित करना अमरीका के लिए एक कठिन चुनौती रहा है।

सोवियत संघ के विघटन के बाद अमरीका और यूरोप (पश्चिमी देशों) के साथ रूस का सम्बन्ध कई उतार-चढ़ावों से गुजर चुका है। विघटन से पहले विश्व व्यवस्था में दो ध्रुव थे-- सोवियत रूस और अमरीका। दुनिया पर वर्चस्व कायम करने के लिए इन दोनों साम्राज्यवादी देशों के बीच कई दशकों तक शीत युद्ध चला था, लेकिन सोवियत संघ के विघटन के बाद शीत युद्ध का अन्त हो गया और इसी के साथ रूसी साम्राज्यवाद भी विघटित हो गया। महाशक्ति बनने के उसके मंसूबे का अन्त नहीं हुआ। दुनिया पर अमरीकी वर्चस्व के बीच रूसी साम्राज्यवाद राख के नीचे पड़ी आग की तरह सुलग रहा था। यही वजह है कि रूस कभी पूरी तरह पश्चिम के साथ खड़ा नहीं हो पाया।

शुरू में रूस ने राजनीतिक तौर पर पश्चिम के लोकतांत्रिक मॉडल की नकल करने की कोशिश भी की। रूसी नेताओं ने पश्चिमी देशों को अपना स्वाभाविक सहयोगी बताया, लेकिन साथ ही वे सोवियत विघटन के बाद बने पूर्वी यूरोपीय देशों में अमरीका और नाटो के बढ़ते प्रभाव से चिन्तित थे। 1997 में रूस ने चेक गणराज्य, पोलैण्ड और हंगरी के पूर्व सोवियत ब्लॉक के राष्ट्रों में नाटो के विस्तार का विरोध किया। 1999 में रूस ने यूगोस्लाविया के ऊपर नाटो बमबारी का विरोध किया। लेकिन जून 1999 में वह बाल्कन में नाटो शान्ति-रक्षा बलों में शामिल भी हो गया। जाहिर सी बात है कि शुरू में आन्तरिक रूप से लड़खडाता हुआ रूस पश्चिमी देशों के साथ कोई

दुश्मनी मोल लेना नहीं चाहता था। इसके चलते शुरू के दो दशकों में विदेश नीति के मामले में वह पश्चिम का पिछलग्गू ही बना रहा और उसके सामने कोई चुनौती बनकर उभर नहीं पाया। इसके बावजूद अपनी अन्दरूनी नीतियों में वह पूरी तरह स्वतंत्र था और पश्चिम के किसी भी दबाव के आगे झुकने के लिए तैयार नहीं था।

अमरीका के लिए रूस एक ऐसी गाँठ बन गया, जो उसके पक्ष में कभी खुल नहीं पायी। यानी पश्चिम के देशों ने अपनी ओर से भरसक कोशिश की कि रूस अमरीका के नव उदारवादी मॉडल को अपना ले और विश्व बैंक, आईएमएफ और विश्व व्यापार संगठन के सामने समर्पण कर दे, लेकिन थोड़े समय को छोड़ दें, तो यह हो नहीं पाया। पश्चिमी देशों के लिए रूस को एक पल के लिए अनदेखा कर पाना सम्भव नहीं है क्योंकि वह संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद का स्थावी सदस्य है, जिसके पास वीटो पॉवर भी है।

अमरीकी चौधराहट वाली एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था में रूस को शामिल करने के लिए 1997 में उसे जी-7 के राजनीतिक मंच से जोड़कर जी-8 बनाया गया। लेकिन जैसे ही रूस की साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षाएँ पंख लगाकर उड़ने लगीं और उसका पश्चिम के देशों से टकराव बढ़ता गया, जी-8 में उसके लिए रह पाना मुश्किल होता चला गया। मार्च 2014 में यूक्रेन-क्रीमिया संकट के बाद अनिश्चित काल के लिए रूस को जी-8 से निलंबित कर दिया गया। 2017 में रूस ने जी-8 से स्थायी रूप से निकलने की घोषणा कर दी। इसके बाद रूस को जी-बीस में अन्य विकासशील देशों के साथ रखकर चलाते रहने की कोशिश की गयी, लेकिन जी-20 में रहकर भी रूस अपने प्रभाव क्षेत्र का लगातार विस्तार करता गया।

यूरोपीय संघ और रूस का सम्बन्ध कई उतार-चढ़ावों का गवाह रहा है। 2003 में इराक पर अमरीकी आक्रमण का रूस ने कड़ा विरोध किया था। 2014 में क्रीमिया और दोनबास पर रूसी सैन्य हस्तक्षेप की घोषणा के बाद अमरीका और यूरोपीय संघ ने रूस पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिया था, शुरू में 170 व्यक्तियों और 44 संस्थाओं पर वीजा प्रतिबन्ध लगाया गया और इसे 2020 तक बढ़ा दिया गया।

रूस यूरोपीय संघ के देशों, विपक्षी पार्टियों, आन्दोलनों और वित्तपतियों को मदद उपलब्ध करवाता रहा है। यूरोप के कुछ देशों की सरकारें रूस से सहानुभूति रखती हैं। आर्थिक मन्दी, अन्दरूनी कलह और हितों के टकराव तथा रूसी प्रभाव के चलते यूरोपीय संघ अन्दर से काफी कमजोर हो गया है। रूस चाहता था कि यूरोपीय संघ में दरार पड़ जाये और उसका एक बड़ा हिस्सा रूस के साथ खड़ा हो जाये।

नव उदारवादी व्यवस्था का फायदा उठाकर आर्थिक रूप से मजबूत चीन भी रूस के लिए एक बड़ा खतरा बन सकता था। लेकिन दोनों देशों ने सीमा विवाद को सुलझा लिया तथा अच्छे-पड़ोसी और मैत्रीपूर्ण सहयोग की संधि पर हस्ताक्षर किये। इसने दोनों देशों को फायदा पहुँचाया। इस तरह रूस के पेट्रोलियम, तकनीक और युद्ध सामान के लिए चीन का बाजार मिल गया। चीन अपनी पेट्रोलियम जरूरत के बड़े हिस्से की पूर्ति रूस से आयात करके करता है। इसके साथ ही रूस अपनी उन्नत युद्ध सामग्री भी चीन को उपलब्ध करवाता है। अब रूस और चीन मिलाकर एक मजबूत खेमा उभर आया है जिसके निशाने पर अमरीकी नेतृत्व वाला जी-7 का साम्राज्यवादी खेमा है।

यूक्रेन युद्ध के समय शक्ति सन्तुलन

अभी यूक्रेन युद्ध जारी है और इस दौरान शक्ति सन्तुलन का मुकम्मल आकलन करना जल्दबाजी होगी, लेकिन फिर भी अगर शुरुआती रुझान देखें तो हमें नजर आता है कि सोवियत रूस द्वारा यूक्रेन हमले का बेलारूस, सीरिया, बर्मा, उत्तरी कोरिया आदि देशों ने खुला समर्थन किया है, जबकि क्यूबा और वेनेजुएला ने अमरीका पर निशाना साधते हुए कहा कि वही इस संकट के लिए जिम्मेदार है, इस तरह परोक्ष रूप से रूस का समर्थन किया है। इससे अलग कजाकिस्तान, किरगिज, उज्बेक, आदि मध्य एशिया के देश, चीन, भारत, ब्राजील और दक्षिण अफ्रीका ने तटस्थ रहकर रूस की इस कार्रवाई का मौन समर्थन ही किया है। अमरीकी नेतृत्व में नाटो, जापान, ताइवान, आस्ट्रेलिया आदि देश रूस के खिलाफ खुलकर सामने आ गये हैं। दुनिया दो खेमों में बँटती जा रही है। यूक्रेन संकट जैसे-जैसे आगे बढ़ेगा, वैसे-वैसे इस खेमेबन्दी में नये समीकरण उभरेंगे।

यूक्रेन हमले के समय रूस खुलकर ललकारता रहा कि दम है तो सामने आओ। वह जानता है दो बड़ी शक्तियों के टकराव का अमरीका सबसे कम स्वागत करेगा क्योंकि बाकी सभी कारकों में यह प्रधान है कि अमरीका यथास्थिति से सबसे अधिक फायदा निचोड़ रहा है, वह 100 रुपये का माल खाता है तो मात्र 45 रुपये का माल पैदा करता है। वह दुनिया की जनता का खून चूसकर जी रहा है और सबसे बाद में चाहेगा कि यह यथास्थिति भंग हो। एक बात और, परजीवी जोंकों की उम्र लम्बी नहीं होती। 17वीं-18वीं सदी के परजीवी स्पेन और उद्यमी ब्रितानी उपनिवेशवादियों की तकदीरों की अदला-बदली और दुनिया के बदलते समीकरण के आलोक में दुनिया की भावी तस्वीर देखी जा सकती है।

हमें आक्रामक रूस के पीछे समर्थन देनेवाले उद्यमी चीन की ताकत को नजरअन्दाज नहीं करना चाहिए। यह ध्यान रहे कि यह वही अमरीका नहीं है जो 9/11 के बाद उन्मत बुश के नेतृत्व में अफगानिस्तान पर टूट पड़ा था। यह वह अमरीका है जो अफगानी तालिबानों के हाथों 20 साला युद्ध में मुँह की खाकर अपना आत्मविश्वास गवाँ चुका है। साम्राज्यवादी विश्व व्यवस्था में दरार पड़ती नजर आ रही है। इससे स्पष्ट है कि साम्राज्यवादियों और पूँजीपतियों के आपसी साँठ-गाँठ से दुनिया की जनता को लूटने का उनके स्वर्णिम दौर का अन्त नजदीक आ रहा है। ○

जब मैं बूढ़ा हो जाऊँगा!

जब मैं बूढ़ा हो जाऊँगा, एकदम जर्जर बूढ़ा, तब तू क्या थोड़ा मेरे पास रहेगा? मुझ पर थोड़ा धीरज तो रखेगा न? मान ले, तेरे महँगे काँच का बर्तन मेरे हाथ से अचानक गिर जाये या फिर मैं सब्जी की कटोरी उलट दूँ टेबल पर, मैं तब बहुत अच्छे से नहीं देख सकूँगा न! मुझे तू चिल्लाकर डाँटना मत प्लीज! बूढ़े लोग सब समय खुद को उपेक्षित महसूस करते रहते हैं, तुझे नहीं पता?

एक दिन मुझे कान से सुनाई देना बन्द हो जाएगा, एक बार में मुझे समझ में नहीं आएगा कि तू क्या कह रहा है, लेकिन इसलिए तू मुझे बहरा मत कहना! जरूरत पड़े तो कष्ट उठाकर एक बार फिर से वह बात कह देना या फिर लिख ही देना कागज पर। मुझे माफ कर देना, मैं तो कुदरत के नियम से बूढ़ा गया हूँ, मैं क्या करूँ बता?

और जब मेरे घुटने काँपने लगेंगे, दोनों पैर इस शरीर का वजन उठाने से इनकार कर देंगे, तू थोड़ा-सा धीरज रखकर मुझे उठ खड़ा होने में मदद नहीं करेगा, बोल? जिस तरह तूने मेरे पैरों के पंजों पर खड़ा होकर पहली बार चलना सीखा था, उसी तरह?

कभी-कभी टूटे रेकॉर्ड प्लेयर की तरह मैं बकबक करता रहूँगा, तू थोड़ा कष्ट करके सुनना। मेरी खिल्ली मत उड़ाना प्लीज। मेरी बकबक से बेचैन मत हो जाना। तुझे याद है, बचपन में तू एक गुब्बारे के लिए मेरे कान के पास कितनी देर तक भुनभुन करता रहता था, जब तक मैं तुझे वह खरीद न देता था, याद आ रहा है तुझे?

हो सके तो मेरे शरीर की गन्ध को भी माफ कर देना। मेरी देह में बुढ़ापे की गन्ध पैदा हो रही है। तब नहाने के लिए मुझसे जबर्दस्ती मत करना। मेरा शरीर उस समय बहुत कमजोर हो जाएगा, जरा-सा पानी लगते ही ठंड लग जाएगी। मुझे देखकर नाक मत सिकोड़ना प्लीज! तुझे याद है, मैं तेरे पीछे दौड़ता रहता था क्योंकि तू नहाना नहीं चाहता था? तू विश्वास कर, बुड्ढों को ऐसा ही होता है। हो सकता है एक दिन तुझे यह समझ में आये, हो सकता है, एक दिन!

तेरे पास अगर समय रहे, हम लोग साथ में गप्पें लड़ाएँगे, ठीक है? भले ही कुछेक पल के लिए क्यों न हो। मैं तो दिन भर अकेला ही रहता हूँ, अकेले-अकेले मेरा समय नहीं कटता। मुझे पता है, तू अपने कामों में बहुत व्यस्त रहेगा, मेरी बुढ़ा गयी बातें तुझे सुनने में अच्छी न भी लगें तो भी थोड़ा मेरे पास रहना। तुझे याद है, मैं कितनी ही बार तेरी छोटे गुड्डे की बातें सुना करता था, सुनता ही जाता था और तू बोलता ही रहता था, बोलता ही रहता था। मैं भी तुझे कितनी ही कहानियाँ सुनाया करता था, तुझे याद है?

एक दिन आएगा जब बिस्तर पर पड़ा रहूँगा, तब तू मेरी थोड़ी देखभाल करेगा? मुझे माफ कर देना यदि गलती से मैं बिस्तर गीला कर दूँ, अगर चादर गन्दी कर दूँ, मेरे अन्तिम समय में मुझे छोड़कर दूर मत रहना, प्लीज!

जब समय हो जाएगा, मेरा हाथ तू अपनी मुट्ठी में भर लेना। मुझे थोड़ी हिम्मत देना ताकि मैं निर्भय होकर मृत्यु का आलिंगन कर सकूँ। चिन्ता मत करना, जब मुझे मेरे सृष्टा दिखाई दे जाएँगे, उनके कानों में फुसफुसाकर कहूँगा कि वे तेरा कल्याण करें। तुझे हर अमंगल से बचायें। कारण कि तू मुझसे प्यार करता था, मेरे बुढ़ापे के समय तूने मेरी देखभाल की थी।

मैं तुझसे बहुत-बहुत प्यार करता हूँ रे, तू खूब अच्छे-से रहना। इसके अलावा और क्या कह सकता हूँ, क्या दे सकता हूँ भला।

(यह रचना बांग्लादेश निवासी मुहम्मद शुभ द्वारा मूलतः बांग्ला में लिखी गयी है। जिसका हिन्दी अनुवाद उत्पल बनर्जी ने किया है।)

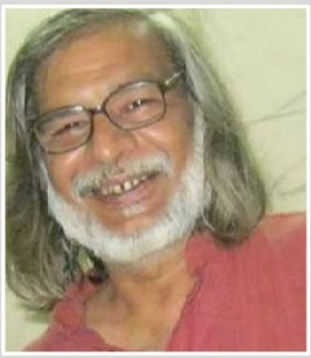

बर्खास्त

फूल के खिलने का डर है
सो पहले फूल का खिलना बरखास्त
फिर फूल बरखास्त
हवा के चलने का डर है
सो हवा का चलना बरखास्त
फिर हवा बरखास्त

डर है पानी के बहने का
सीधी-सी बात
पानी का बहना बरखास्त
न काबू आये तो पानी बरखास्त

सवाल उठने का सवाल ही नहीं
सवाल का उठना बरखास्त
सवाल उठाने वाला बरखास्त
यानी सवाल बरखास्त

असहमति कोई है तो असहमति बरखास्त
असहमत बरखास्त
और फिर सभा बरखास्त
जनता का डर
तो पूरी जनता बरखास्त
किले में बन्द
हथियारबन्द खौफजदा
बौना तानाशाह
चिल्लाता है
बरखास्त बरखास्त
रातों को जगता है चिल्लाता है
खुशबू को गिरफ्तार करो
उड़ते पंछी को गोली मारो।

हमारा जातीय गौरव

आधी से ज्यादा आबादी
जहाँ खून की कमी की शिकार थी
हमने वहाँ खून के खुले खेल खेले

हर बड़ा रक्तपात
एक रंगारंग राष्ट्रीय महोत्सव हुआ

हमने खूब बस्तियाँ जलाईं
और खूब उजाला किया

और छत पर चढ़कर चिल्लाकर कहा
देखो, दुनिया के लोगों
देखो हमारा जातीय गौरव!

— मनमोहन